

कहो कहानी

उच्च प्राथमिक स्तर के लिए
हिंदी की पूरक पुस्तक





कहो कहानी

उच्च प्राथमिक स्तर के लिए
हिंदी की पूरक पुस्तक

विद्यया ऽ मृतमश्नुते



एन सी ई आर टी
NCERT

राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्
NATIONAL COUNCIL OF EDUCATIONAL RESEARCH AND TRAINING



प्रथम संस्करण

जून 2015 ज्येष्ठ 1937

पुनर्मुद्रण

जून 2019 ज्येष्ठ 1941

जून 2020 ज्येष्ठ 1942

PD 145T RPS

© राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण
परिषद्, 2015

₹ 55.00

80 जी.एस.एम. पेपर पर मुद्रित।

सचिव, राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण
परिषद्, श्री अरविंद मार्ग, नयी दिल्ली 110 016
द्वारा प्रकाशन प्रभाग में प्रकाशित तथा न्यू प्रिंट
इंडिया, 8/4बी, इंडस्ट्रियल एरिया, साइट-IV,
साहिबाबाद, गाज़ियाबाद (उ.प्र.) द्वारा मुद्रित।

ISBN 978-93-5007-316-2

सर्वाधिकार सुरक्षित

- ❑ प्रकाशक की पूर्व अनुमित के बिना इस प्रकाशन के किसी भाग को छापना तथा इलेक्ट्रॉनिकी, मशीनी, फोटोप्रतिलिपि, रिकॉर्डिंग अथवा किसी अन्य विधि से पुनः प्रयोग पद्धति द्वारा उसका संग्रहण अथवा प्रचारण वर्जित है।
- ❑ इस पुस्तक की बिक्री इस शर्त के साथ की गई है कि प्रकाशन की पूर्व अनुमित के बिना यह पुस्तक अपने मूल आवरण अथवा जिल्द के अलावा किसी अन्य प्रकार से व्यापार द्वारा उधारी पर, पुनर्विक्रय या किराए पर न दी जाएगी, न बेची जाएगी।
- ❑ इस प्रकाशन का सही मूल्य इस पृष्ठ पर मुद्रित है। रबड़ की मुहर अथवा चिपकाई गई पर्ची (स्टिकर) या किसी अन्य विधि द्वारा अंकित कोई भी संशोधित मूल्य गलत है तथा मान्य नहीं होगा।

एन.सी.ई.आर.टी. के प्रकाशन प्रभाग के कार्यालय

एन.सी.ई.आर.टी. कैम्पस

श्री अरविंद मार्ग

नयी दिल्ली 110 016

फ़ोन : 011-26562708

108ए 100 फीट रोड

हेली एक्सटेंशन, होस्टेकेरे

बनाशंकरा III इस्टेज

बेंगलुरु 560 085

फ़ोन : 080-26725740

नवजीवन ट्रस्ट भवन

डाकघर नवजीवन

अहमदाबाद 380 014

फ़ोन : 079-27541446

सी.डब्ल्यू.सी. कैम्पस

निकट: धनकल बस स्टॉप पिनहटी

कोलकाता 700 114

फ़ोन : 033-25530454

सी.डब्ल्यू.सी. कॉम्प्लेक्स

मालीगांव

गुवाहाटी 781021

फ़ोन : 0361-2676869

प्रकाशन सहयोग

अध्यक्ष, प्रकाशन प्रभाग	: अनूप कुमार राजपूत
मुख्य संपादक	: श्वेता उप्पल
मुख्य उत्पादन अधिकारी	: अरुण चितकारा
मुख्य व्यापार प्रबंधक	: विपिन दिवान
संपादक	: रेखा अग्रवाल
सहायक उत्पादन अधिकारी	: दीपक जैसवाल

आवरण एवं सज्जा

जोएल गिल



आमुख

राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद् समय-समय पर विद्यार्थियों के लिए पाठ्यपुस्तकों के साथ-साथ पूरक पाठ्यसामग्री/अतिरिक्त पाठ्यसामग्री का प्रकाशन करती है। राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा-2005 में कहा गया है कि बच्चों की पठन रुचि को विकसित करने के लिए उनके आस-पास पठनसामग्री का विपुल भंडार होना चाहिए। उनके सामने चयन के ऐसे विकल्प मौजूद हों, जो उन्हें स्थायी पाठक बनने में मदद करें। इसे ध्यान में रखकर उच्च प्राथमिक स्तर के हिंदी विद्यार्थियों के लिए **कहो कहानी** को तैयार किया गया है। इस पुस्तक में आधुनिक युग की देश-विदेश की श्रेष्ठ कहानियों का संचयन किया गया है। आशा है यह पुस्तक विद्यार्थियों में पढ़ने की संस्कृति विकसित करेगी तथा अध्यापकों सहित अन्य पाठकों को आकृष्ट करेगी।

पुस्तक के सामग्री-चयन और समीक्षा के लिए आयोजित कार्यशालाओं में उपस्थित होकर जिन विषय विशेषज्ञों तथा अनुभवी अध्यापकों ने अपने बहुमूल्य सुझावों द्वारा पुस्तक को उपयोगी बनाने में सहयोग किया है, परिषद् उनके प्रति आभार व्यक्त करती है। हम श्री अशोक वाजपेयी, सुप्रसिद्ध लेखक-कवि के भी आभारी हैं जिन्होंने पुस्तक की समग्र रूप से समीक्षा कर पुस्तक को बेहतर बनाने में सहायता की है। यह पुस्तक परिषद् के भाषा शिक्षा विभाग के हिंदी संकाय सदस्यों द्वारा किया गया एक सराहनीय प्रयास है।

निश्चय ही, पाठ्यक्रम तथा पाठ्यपुस्तकों का विकास एक निरंतर चलने वाली प्रक्रिया है। अतः पुस्तक को और उपयोगी बनाने के लिए विद्यार्थियों, अध्यापकों और विशेषज्ञों के सुझावों का स्वागत है।

निदेशक

राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान
और प्रशिक्षण परिषद्

नयी दिल्ली







कहो कहानी

दुनिया में शायद ही ऐसा कोई व्यक्ति हो जिसने अपने जीवन में कोई कहानी कही-सुनी ना हो। बचपन में हम सबने अपने दादा-दादी, नाना-नानी, माता-पिता या बड़ों से कोई न कोई कहानी जरूर सुनी है। रात में सोने से पहले या अक्सर स्कूल की गर्मियों की छुट्टियों में विशेष रूप से हम सब कहानी कहने-सुनने-देखने-पढ़ने की जिद या अपेक्षा रखते हैं। कहानी कहने-सुनने की परंपरा उतनी ही पुरानी है जितनी कि मानव-सभ्यता की कहानी। भारतीय सभ्यता के विभिन्न चरणों में विपुल कथा-संसार है। इसमें वेद हैं, उपनिषद् हैं, पुराण हैं, रामायण है, महाभारत है, बुद्ध-जातक हैं। पंचतंत्र है तो हितोपदेश भी है। कहानियों की दुनिया में राजा-रानी हैं, पशु-पक्षी-परियाँ हैं, चाँद-सितारे हैं। वहाँ सुख है तो दुख भी है। वहाँ सच्ची घटनाएँ हैं तो कल्पना की लंबी उड़ान भी। जब कभी हम अपने अतीत को याद करते हैं या वर्तमान के किसी अनुभव को दूसरों से साझा करते हैं तो हम दरअसल कहानी ही कह-सुन रहे होते हैं। भविष्य की कल्पनाएँ भी कहानी ही हैं।

आज की कहानी भी कहने-सुनने की मौखिक परंपरा से होते हुए, लिखित कहानी और दृश्य-श्रव्य (टी.वी., रंगमंच, सिनेमा आदि में भी) कहानी के दौर में पहुँची है। कहानी न केवल बच्चों अपितु बड़े-बूढ़ों के मनोरंजन, शिक्षण और ज्ञान का माध्यम भी रही है। आधुनिक कहानी कला के रूप में खड़ी बोली—हिंदी में यह लगभग सौ साल पुरानी है। यों भी कह सकते हैं कि साहित्यिक विधा के रूप में कहानी का विकास आधुनिक युग की देन है। हिंदी की आरंभिक श्रेष्ठ कहानियाँ जैसे ‘पंच-परमेश्वर’ (प्रेमचंद) और ‘उसने कहा था’ (चंद्रधर शर्मा गुलेरी) सन् 1915 में प्रकाशित हुई थीं।



कहानी में लेखक अपने अनुभव और कल्पना के सहारे जीवन के किसी एक अंग या मनोभाव का चित्रण करता है। संक्षिप्तता, प्रभाव की सघनता, कौतूहल की प्रधानता और मनोरंजन कहानी के मुख्य गुण माने जाते हैं। जिज्ञासा और कौतूहल (आगे क्या हुआ?) बनाए रखना कहानी का विशेष गुण है। कहानी में किसी घटना, भाव, विचार, पात्र या समस्या का ब्योरा होता है। एक परिवेश होता है जिसमें द्रष्टृ के माध्यम से कहानी आगे बढ़ते हुए अपने चरम उत्कर्ष तक पहुँचती है।

कहानी में एक कथानक कुछ पात्र/चरित्र, कुछ संवाद होते हैं। हर कहानीकार का कहानी कहने का अपना ढंग, भाव-शैली और उद्देश्य होता है। कहानी कहने (सुनाने-लिखने-दिखाने) के सैकड़ों ढंग-तरीके हो सकते हैं। कुछ कहानियों में चरित्र प्रधान होते हैं, तो कुछ में घटनाएँ और किसी कहानी में एक खास तरह के वातावरण या मनोभावों को चित्रित किया जा सकता है। लेकिन इतना सच है कि हर कहानी हमारे जीवन-रहस्य के किसी न किसी पक्ष को अवश्य खोलती है। कहानी हमारे जीवन की समझ, कल्पना-शक्ति, तर्कशक्ति, अवलोकन और विश्लेषण क्षमता का विस्तार करती है। कहानी कहने-सुनने का ही नहीं बल्कि पढ़ने की रुचि का भी विस्तार करती है।

कहानियों के इस गुलदस्ते में देश-विदेश की कुछ श्रेष्ठ कहानियाँ संकलित हैं। इनमें से कुछ कहानियाँ तो 'क्लैसिक' (सदाबहार) का दर्जा पा चुकी हैं। 'हार की जीत' (सुदर्शन), 'छोटा जादूगर' (जयशंकर प्रसाद) और 'कितनी ज़मीन' (लेव टॉलस्टॉय) ऐसी ही कहानियाँ हैं जो हमेशा हमारी मानवीय संवेदनाओं को गहरे में छूती हैं। 'क्यों-क्यों लड़की' (महाश्वेता देवी) सवाल पैदा करती है तो 'अंतरिक्ष-सूट में बंदर' (अमृतलाल नागर) हमें वैज्ञानिक-कल्पना-लोक की सैर कराती है। 'वारिस' (रामचंद्र भावे), 'अदल-बदल' (पन्नालाल पटेल) और 'शांति' (विष्णु सखाराम खांडेकर) उच्च मानवीय मूल्यों की पक्षधर हैं। 'गिरगिट का सपना' (मोहन राकेश) अगर रंग-बदलती दुनिया में खुद की तलाश है तो 'दायाँ-बायाँ' (गुलज़ार) हम सबके साथी।

कहानियों की इस दुनिया में तेरी-मेरी-उसकी, सबकी बात है। तो आओ, कहानी कहते हैं, सुनते हैं, पढ़ते हैं और रचते हैं।





पुस्तक निर्माण समूह

सदस्य-समन्वयक

- चंद्रा सदायत — प्रोफ़ेसर, भाषा शिक्षा विभाग, एन.सी.ई.आर.टी., नयी दिल्ली
नरेश कोहली — सहायक प्रोफ़ेसर, भाषा शिक्षा विभाग, एन.सी.ई.आर.टी., नयी दिल्ली
प्रमोद कुमार दुबे — सहायक प्रोफ़ेसर, भाषा शिक्षा विभाग, एन.सी.ई.आर.टी., नयी दिल्ली
संध्या सिंह — प्रोफ़ेसर, भाषा शिक्षा विभाग, एन.सी.ई.आर.टी., नयी दिल्ली

सदस्य

- अपूर्वानंद — प्रोफ़ेसर, हिंदी विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली
अशोक वाजपेयी — हिंदी लेखक, सी-18, अनुपम अपार्टमेंट्स, वसुंधरा एनक्लेव, दिल्ली
अक्षय कुमार — हिंदी शिक्षक, सर्वोदय बाल विद्यालय, फ़तेहपुर बेरी, दिल्ली
उषा शर्मा — एसोसिएट प्रोफ़ेसर, प्राथमिक शिक्षा विभाग, एन.सी.ई.आर.टी., नयी दिल्ली
प्रेमपाल शर्मा — हिंदी लेखक, 96, कला विहार, मयूर विहार, फेज-1, दिल्ली
माधवी कुमार — पूर्व एसोसिएट प्रोफ़ेसर, एन.सी.ई.आर.टी., नयी दिल्ली
राकेश कुमार — उप-प्राचार्य, बी.आर.एस.बी.वी., भोलानाथ नगर, दिल्ली
रामजन्म शर्मा — पूर्व प्रोफ़ेसर, भाषा शिक्षा विभाग, एन.सी.ई.आर.टी., नयी दिल्ली
लता पाण्डेय — प्रोफ़ेसर, प्राथमिक शिक्षा विभाग, एन.सी.ई.आर.टी., नयी दिल्ली



- विमल थोराट — प्रोफ़ेसर, इंदिरा गांधी मुक्त विश्वविद्यालय, (इग्नू) नयी दिल्ली
- श्यामसिंह सुशील — हिंदी लेखक, ए-13, दैनिक जनयुग अपार्टमेंट्स, वसुंधरा
एनक्लेव, दिल्ली
- संजय कुमार सुमन — एसोसिएट प्रोफ़ेसर, भाषा शिक्षा विभाग, एन.सी.ई.आर.टी.,
नयी दिल्ली
- संतोष कुमार पाण्डेय — हिंदी शिक्षक, केंद्रीय विद्यालय, जे.एन.यू., नयी दिल्ली





आभार

परिषद् रचनाकारों, उनके परिजनों, संस्थानों/प्रकाशकों के प्रति आभारी है जिन्होंने अपनी रचनाओं को प्रकाशित करने की अनुमति प्रदान की।

पुस्तक निर्माण संबंधी कार्यों में तकनीकी सहयोग के लिए परिषद् डी.टी.पी. ऑपरेटर नरगिस इस्लाम, कंप्यूटर टाइपिस्ट चंद्रकांत और कॉपी एडीटर श्यामसिंह सुशील की आभारी है।





पढ़ूँगी, बढ़ूँगी, सपनों के आसमान में
ऊँची उड़ूँगी, बस मौका चाहिए मुझे,
अपनी राह खुद चुनूँगी





विषय-क्रम

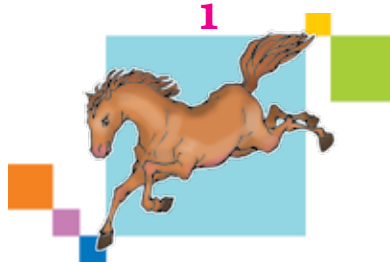
आमुख			iii
कहो कहानी			v
1. हार की जीत	(हिंदी)	सुदर्शन	1
2. छोटा जादूगर	(हिंदी)	जयशंकर प्रसाद	8
3. क्यों-क्यों लड़की	(बांग्ला)	महाश्वेता देवी	15
4. अंतरिक्ष-सूट में बंदर	(हिंदी)	अमृतलाल नागर	20
5. वारिस	(कन्नड़)	रामचंद्र भावे	25
6. कितनी ज़मीन	(रूसी)	लेव टॉलस्टॉय	35
7. अदल-बदल	(गुजराती)	पन्नालाल पटेल	46
8. शांति	(मराठी)	विष्णु सखाराम खांडेकर	53
9. गिरगिट का सपना	(हिंदी)	मोहन राकेश	59
10. दायँ-बायँ	(हिंदी)	गुलज़ार	65





आओ मिल-जुल कर
रचें एक सुंदर संसार

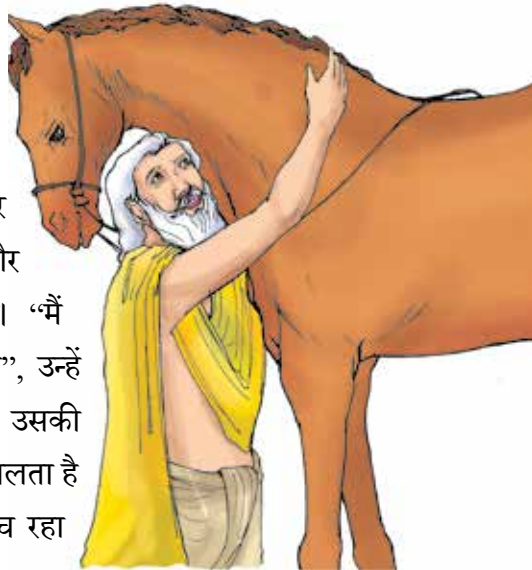




हार की जीत

– सुदर्शन

माँ को अपने बेटे और किसान को अपने लहलहाते खेत देखकर जो आनंद आता है, वही आनंद बाबा भारती को अपना घोड़ा देखकर आता था। भगवद्भजन से जो समय बचता, वह घोड़े को अर्पण हो जाता। वह घोड़ा बड़ा सुंदर था, बड़ा बलवान। उसके जोड़े का घोड़ा सारे इलाके में न था। बाबा भारती उसे 'सुलतान' कहकर पुकारते, अपने हाथ से खरहरा करते, खुद दाना खिलाते और देख-देखकर प्रसन्न होते थे। उन्होंने रुपया, माल, असबाब, ज़मीन आदि अपना सब-कुछ छोड़ दिया था, यहाँ तक कि उन्हें नगर के जीवन से भी घृणा थी। अब गाँव से बाहर एक छोटे-से मंदिर में रहते और भगवान का भजन करते थे। "मैं सुलतान बिना नहीं रह सकूँगा", उन्हें ऐसी भ्रांति-सी हो गई थी। वे उसकी चाल पर लट्टू थे। कहते, "ऐसा चलता है जैसे मोर घटा को देखकर नाच रहा



2/ कहो कहानी

हो।” जब तक संध्या-समय सुलतान पर चढ़कर आठ-दस मील का चक्कर न लगा लेते, उन्हें चैन न आता।

खड़गसिंह उस इलाके का प्रसिद्ध डाकू था। लोग उसका नाम सुनकर काँपते थे। होते-होते सुलतान की कीर्ति उसके कानों तक भी पहुँची। उसका हृदय उसे देखने के लिए अधीर हो उठा। वह एक दिन दोपहर के समय बाबा भारती के पास पहुँचा और नमस्कार करके बैठ गया।

बाबा भारती ने पूछा, “खड़गसिंह, क्या हाल है ?”

खड़गसिंह ने सिर झुकाकर उत्तर दिया, “आपकी दया है।”

“कहो, इधर कैसे आ गए ?”

“सुलतान की चाह खींच लाई।”

“विचित्र जानवर है। देखोगे तो प्रसन्न हो जाओगे।”

“मैंने भी बड़ी प्रशंसा सुनी है।”

“उसकी चाल तुम्हारा मन मोह लेगी।”

“कहते हैं देखने में बड़ा सुंदर है।”

“क्या कहना! जो उसे एक बार देख लेता है, उसके हृदय पर उसकी छवि अंकित हो जाती है।”

“बहुत दिनों से अभिलाषा थी, आज उपस्थित हो सका हूँ।”

बाबा भारती और खड़गसिंह अस्तबल में पहुँचे। बाबा ने घोड़ा दिखाया घमंड से, खड़गसिंह ने घोड़ा देखा आश्चर्य से, उसने सहस्रों घोड़े देखे थे, परंतु ऐसा बाँका घोड़ा उसकी आँखों से कभी न गुजरा था। सोचने लगा, भाग्य की बात है, ऐसा घोड़ा खड़गसिंह के पास होना चाहिए था। इस साधु को ऐसी चीजों से क्या लाभ। कुछ देर तक आश्चर्य से चुपचाप खड़ा रहा। इसके पश्चात् उसके हृदय में हलचल होने लगी।



बालकों की-सी अधीरता से बोला, “परंतु बाबाजी, इसकी चाल न देखी तो क्या !”

बाबाजी भी मनुष्य ही थे। अपनी वस्तु की प्रशंसा दूसरे के मुख से सुनने के लिए उनका हृदय अधीर हो गया। घोड़े को खोलकर बाहर गए। घोड़ा वायु-वेग से उड़ने लगा। उसकी चाल देखकर खड़गसिंह के हृदय पर साँप लोट गया। वह डाकू था और जो वस्तु उसे पसंद आ जाए उस पर वह अपना अधिकार समझता था। उसके पास बाहुबल था और आदमी थे। जाते-जाते उसने कहा, “बाबाजी, मैं यह घोड़ा आपके पास न रहने दूँगा।”

बाबा भारती डर गए। अब उन्हें रात को नींद न आती। सारी रात अस्तबल की रखवाली में कटने लगी। प्रतिक्षण खड़गसिंह का भय लगा रहता, परंतु कई मास बीत गए और वह न आया। यहाँ तक कि बाबा भारती कुछ असावधान हो गए और इस भय को स्वप्न के भय की नाई मिथ्या समझने लगे।

संध्या का समय था। बाबा भारती सुलतान की पीठ पर सवार होकर घूमने जा रहे थे। उस समय उनकी आँखों में चमक थी, मुख पर प्रसन्नता। कभी घोड़े के शरीर को देखते, कभी उसके रंग को और मन में फूले न समाते थे। सहसा एक ओर से आवाज़ आई, “ओ बाबा, इस कंगले की सुनते जाना।” आवाज़ में करुणा थी, बाबा ने घोड़े को रोक लिया देखा, एक अपाहिज वृक्ष की छाया में पड़ा कराह रहा है बोले, “क्यों, तुम्हें क्या कष्ट है?”

अपाहिज ने हाथ जोड़कर कहा, “बाबा, मैं दुखियारा हूँ मुझ पर दया करो रामावाला यहाँ से तीन मील है, मुझे वहाँ जाना है। घोड़े पर चढ़ा लो, परमात्मा भला करेगा!”

“वहाँ तुम्हारा कौन है?”

“दुर्गादत्त वैद्य का नाम आपने सुना होगा। मैं उनका सौतेला भाई हूँ।”

बाबा भारती ने घोड़े से उतरकर अपाहिज को घोड़े पर सवार किया और स्वयं उसकी लगाम पकड़कर धीरे-धीरे चलने लगे।



4/ कहो कहानी

सहसा उन्हें एक झटका-सा लगा और लगाम हाथ से छूट गई। उनके आश्चर्य का ठिकाना न रहा, जब उन्होंने देखा कि अपाहिज घोड़े की पीठ पर तनकर बैठा है और घोड़े को दौड़ाए लिए जा रहा है। उनके मुख से भय, विस्मय और निराशा से मिली हुई चीख निकल गई। वह अपाहिज डाकू खड़गसिंह था।

बाबा भारती कुछ देर तक चुप रहे और इसके पश्चात् कुछ निश्चय करके पूरे बल से चिल्लाकर बोले, “ज़रा ठहर जाओ।”

खड़गसिंह ने यह आवाज़ सुनकर घोड़ा रोक लिया और उसकी गर्दन पर प्यार से हाथ फेरते हुए कहा, “बाबाजी, यह घोड़ा अब न दूँगा।”

“परंतु एक बात सुनते जाओ।”

खड़गसिंह ठहर गया बाबा भारती ने निकट जाकर उसकी ओर ऐसी आँखों से देखा जैसे बकरा कसाई की ओर देखता है और कहा, “यह घोड़ा तुम्हारा हो चुका है। मैं तुमसे इसे वापस करने के लिए न कहूँगा। परंतु खड़गसिंह, केवल एक प्रार्थना करता हूँ उसे अस्वीकार न करना, नहीं तो मेरा दिल टूट जाएगा।”

“बाबाजी, आज्ञा दीजिए मैं आपका दास हूँ, केवल यह घोड़ा न दूँगा।”

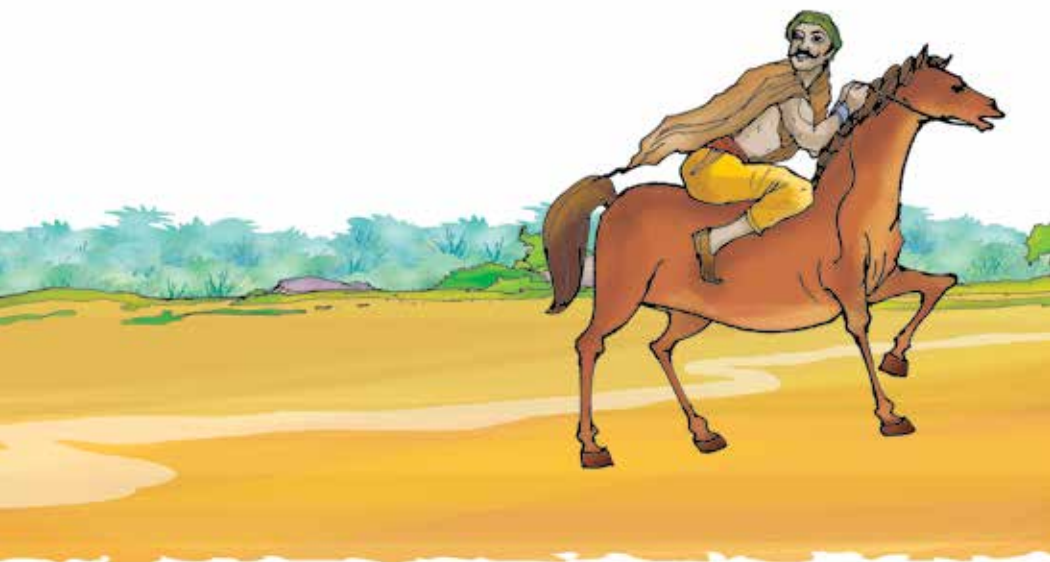


“अब घोड़े का नाम न लो मैं तुमसे इसके विषय में कुछ न कहूँगा मेरी प्रार्थना केवल यह है कि इस घटना को किसी के सामने प्रकट न करना।”

खड़गसिंह का मुँह आश्चर्य से खुला रह गया। उसका विचार था कि उसे घोड़े को लेकर यहाँ से भागना पड़ेगा, परंतु बाबा भारती ने स्वयं उससे कहा, ‘इस घटना को किसी के सामने प्रकट न करना।’ इससे क्या प्रयोजन सिद्ध हो सकता है? खड़गसिंह ने बहुत सोचा, बहुत सिर मारा, परंतु कुछ समझ न सका। हारकर उसने अपनी आँखें बाबा भारती के मुख पर गड़ा दीं और पूछा, “बाबाजी इसमें आपको क्या डर है?”

सुनकर बाबा भारती ने उत्तर दिया, “लोगों को यदि इस घटना का पता लग गया तो वे किसी गरीब पर विश्वास न करेंगे।” यह कहते-कहते उन्होंने सुलतान की ओर से इस तरह मुँह मोड़ लिया जैसे उनका उससे कभी कोई संबंध ही नहीं रहा हो।

बाबा भारती चले गए, परंतु उनके शब्द खड़गसिंह के कानों में उसी प्रकार गूँज रहे थे। सोचता था, कैसे ऊँचे विचार हैं, कैसा पवित्र भाव है! उन्हें इस घोड़े से प्रेम था, इसे देखकर उनका मुख फूल की नाई खिल जाता था। कहते थे, ‘इसके बिना मैं रह न सकूँगा’। इसकी रखवाली में वे कई रात सोए नहीं। भजन-भक्ति न कर



6/ कहो कहानी



रखवाली करते रहे। परंतु आज उनके मुख पर दुख की रेखा तक न दिखाई पड़ती थी। उन्हें केवल यह खयाल था कि कहीं लोग गरीबों पर विश्वास करना न छोड़ दें ऐसा मनुष्य, मनुष्य नहीं, देवता है।

रात्रि के अंधकार में खड़गसिंह बाबा भारती के मंदिर में पहुँचा चारों ओर सन्नाटा था आकाश में तारे टिमटिमा रहे थे थोड़ी दूर पर गाँवों के कुत्ते भौंक रहे थे मंदिर के अंदर कोई शब्द सुनाई न देता था खड़गसिंह सुलतान की बाग पकड़े हुए था वह धीरे-धीरे अस्तबल के फाटक पर पहुँचा। फाटक खुला पड़ा था। किसी समय वहाँ बाबा भारती स्वयं लाठी लेकर पहरा देते थे, परंतु आज उन्हें किसी चोरी, किसी डाके का भय न था। खड़गसिंह ने आगे बढ़कर सुलतान को उसके स्थान पर बाँध दिया और बाहर निकलकर सावधानी से फ़ाटक बंद कर दिया, इस समय उसकी आँखों में नेकी के आँसू थे।

रात्रि का तीसरा पहर बीत चुका था। चौथा पहर आरंभ होते ही बाबा भारती ने अपनी कुटिया से बाहर निकल ठंडे जल से स्नान किया। उसके पश्चात्, इस प्रकार जैसे कोई स्वप्न में चल रहा हो, उनके पाँव अस्तबल की ओर बढ़े परंतु फ़ाटक पर पहुँचकर उनको अपनी भूल प्रतीत हुई साथ ही घोर निराशा ने पाँवों को मन-मनभर का भारी बना दिया, वे वहीं रुक गए।

घोड़े ने अपने स्वामी के पाँवों की चाप को पहचान लिया और ज़ोर से हिनहिनाया। अब बाबा भारती आश्चर्य और प्रसन्नता से दौड़ते हुए अंदर घुसे और अपने



प्यारे घोड़े के गले से लिपटकर इस प्रकार रोने लगे मानो कोई पिता बहुत दिन से बिछुड़े हुए पुत्र से मिल रहा हो बार-बार उसकी पीठ पर हाथ फेरते, बार-बार उसके मुँह पर थपकियाँ देते।

फिर वे संतोष से बोले, “अब कोई गरीबों की सहायता से मुँह न मोड़ेगा।”

थोड़ी देर बाद जब वह अस्तबल से बाहर निकले तो उनकी आँखों से आँसू बह रहे थे। उनके आँसू उसी भूमि पर ठीक उसी जगह गिर रहे थे, जहाँ से बाहर निकलने के बाद खड़गसिंह खड़ा होकर रो रहा था। दोनों के आँसुओं का उसी भूमि की मिट्टी पर परस्पर मिलाप हो गया।





छोटा जादूगर

— जयशंकर प्रसाद

कार्निवल के मैदान में बिजली जगमगा रही थी। हँसी और विनोद का कलनाद गूँज रहा था। मैं खड़ा था, उस छोटे फुहारे के पास, जहाँ एक लड़का चुपचाप खाने पीनेवालों को देख रहा था। उसके गले में फटे कुरते के ऊपर से एक मोटी-सी सूत की रस्सी पड़ी थी और जेब में कुछ ताश के पत्ते थे। उसके मुँह पर गंभीर विषाद के साथ धैर्य की रेखा थी। मैं उसकी ओर न जाने क्यों आकर्षित हुआ। उसके अभाव में भी संपन्नता थी।

मैंने पूछा, “क्यों जी, तुमने इसमें क्या देखा?”

“मैंने सब देखा है यहाँ चूड़ी फेंकते हैं, खिलौनों पर निशाना लगाते हैं और तीर से नंबर छेदते हैं। मुझे तो खिलौनों पर निशाना लगाना अच्छा मालूम हुआ। जादूगर तो बिल्कुल निकम्मा है



उससे अच्छा तो ताश का खेल मैं ही दिखा सकता हूँ।” उसने बड़ी प्रगल्भता से कहा। उसकी वाणी में कहीं रुकावट न थी।

मैंने पूछा, “और उस परदे में क्या है? वहाँ तुम गए थे?”

“नहीं, वहाँ मैं नहीं जा सका। टिकट लगता है।”

मैंने कहा, “तो चलो, मैं वहाँ पर तुमको लिवा चलूँ।” मैंने मन-ही-मन कहा, ‘भाई! आज के तुम्हीं मित्र रहे’।

उसने कहा, “वहाँ जाकर क्या कीजिएगा? चलिए, निशाना लगाया जाए।”

मैंने उससे सहमत होकर कहा, “तो फिर चलो, पहले शरबत पी लिया जाए।” उसने स्वीकार-सूचक सिर हिला दिया।

मनुष्यों की भीड़ से जाड़े की संध्या भी वहाँ गरम हो रही थी। हम दोनों शरबत पीकर निशाना लगाने चले। राह में ही मैंने उससे पूछा, “तुम्हारे घर में और कौन हैं?”

“माँ और बाबूजी।”

“उन्होंने तुमको यहाँ आने के लिए मना नहीं किया?”

“बाबूजी जेल में हैं।”

“क्यों?”

“देश के लिए।” वह गर्व से बोला।

“और तुम्हारी माँ?”

“वह बीमार हैं।”

“और तुम तमाशा देख रहे हो?”

उसके मुँह पर तिरस्कार की हँसी फूट पड़ी उसने कहा, “तमाशा देखने नहीं, दिखाने निकला हूँ कुछ पैसे ले जाऊँगा, तो माँ को पथ्य दूँगा। मुझे शरबत न पिलाकर आपने मेरा खेल देखकर मुझे कुछ दे दिया होता, तो मुझे अधिक प्रसन्नता होती।”

मैं आश्चर्य से उस तेरह-चौदह वर्ष के लड़के को देखने लगा।

“हाँ, मैं सच कहता हूँ बाबूजी! माँजी बीमार हैं, इसीलिए मैं नहीं गया।”



10/ कहो कहानी

“कहाँ?”

“जेल में! जब कुछ लोग खेल-तमाशा देखते ही हैं, तो मैं क्यों न दिखाकर माँ की दवा करूँ और अपना पेट भरूँ।”

मैंने दीर्घ निःश्वास लिया। चारों ओर बिजली के लड्डू नाच रहे थे मन व्यग्र हो उठा मैंने उससे कहा, “अच्छा चलो, निशाना लगाया जाए।”

हम दोनों उस जगह पर पहुँचे, जहाँ खिलौने को गेंद से गिराया जाता था। मैंने बारह टिकट खरीदकर उस लड़के को दिए।



वह निकला पक्का निशानेबाज। उसकी कोई गेंद खाली नहीं गई देखनेवाले दंग रह गए। उसने बारह खिलौनों को बटोर लिया, लेकिन उठाता कैसे? कुछ मेरी रूमाल में बँधे, कुछ जेब में रख लिए गए।

लड़के ने कहा, “बाबूजी, आपको तमाशा दिखाऊँगा। बाहर आइए, मैं चलता हूँ।” वह नौ-दो ग्यारह हो गया। मैंने मन-ही-मन कहा, ‘इतनी जल्दी आँख बदल गई!’

मैं घूमकर पान की दुकान पर आ गया। पान खाकर बड़ी देर तक इधर-उधर टहलता-देखता रहा। झूले के पास लोगों का ऊपर-नीचे आना देखने लगा अकस्मात् किसी ने ऊपर के हिंडोले से पुकारा, “बाबूजी!”

मैंने पूछा, “कौन?”

“मैं हूँ छोटा जादूगर।”

कलकत्ते के सुरम्य बोटैनिकल-उद्यान में लाल कमलिनी से भरी हुई एक छोटी-सी झील के किनारे घने वृक्षों की छाया में अपनी मंडली के साथ बैठा हुआ, मैं जलपान कर रहा था बातें हो रही थीं इतने में वही छोटा जादूगर दिखाई पड़ा।

हाथ में चारखाने का खादी का झोला, साफ़ जाँघिया और आधी बाँहों का कुरता सिर पर मेरी रूमाल सूत की रस्सी से बँधी हुई थी। मस्तानी चाल में झूमता हुआ आकर वह कहने लगा—

“बाबूजी, नमस्ते! आज कहिए तो खेल दिखाऊँ” ?

“नहीं जी, अभी हम लोग जलपान कर रहे हैं।”

“फिर इसके बाद क्या गाना-बजाना होगा, बाबूजी” ?

“नहीं जी, तुमको . . . ,” क्रोध से मैं कुछ और कहने जा रहा था श्रीमतीजी ने कहा, “दिखलाओ जी, तुम तो अच्छे आए। भला, कुछ मन तो बहलो।” मैं चुप हो गया, क्योंकि श्रीमतीजी की वाणी में वह माँ की-सी मिठास थी, जिसके सामने किसी भी लड़के को रोका नहीं जा सकता। उसने खेल आरंभ किया।

उस दिन कार्निवल के सब खिलौने उसके खेल में अपना अभिनय करने लगे, भालू मनाने लगा बिल्ली रूठने लगी बंदर घुड़कने लगा और गुड़िया का ब्याह हुआ लड़के की वाचालता से ही अभिनय हो रहा था सब हँसते-हँसते लोट-पोट हो गए।

मैं सोच रहा था। बालक को आवश्यकता ने कितना शीघ्र चतुर बना दिया। यही तो संसार है।

ताश के सब पत्ते लाल हो गए फिर सब काले हो गए गले की सूत की डोरी टुक-डे-टुकड़े होकर जुड़ गई लट्टू अपने से नाच रहे थे मैंने कहा, “अब हो चुका। अपना खेल बटोर लो, हम लोग भी अब जाएँगे।”

श्रीमतीजी ने धीरे से उसे एक रुपया दे दिया वह उछल उठा।

मैंने कहा, “लड़के!”

“छोटा जादूगर कहिए यही मेरा नाम है इसी से मेरी जीविका है।”





मैं कुछ बोलना ही चाहता था कि श्रीमतीजी ने कहा, “अच्छा, तुम इस रुपये से क्या करोगे?”

“पहले भरपेट पकौड़ी खाऊँगा फिर एक सूती कंबल लूँगा।”

मेरा क्रोध अब लौट आया मैं अपने पर बहुत क्रुद्ध होकर सोचने लगा, ‘ओह! कितना स्वार्थी हूँ मैं। उसके एक रुपया पाने पर मैं ईर्ष्या करने लगा था न’ !

वह नमस्कार करके चला गया हम लोग लता-कुंज देखने के लिए चले।

उस छोटे से बनावटी जंगल में संध्या साँय-साँय करने लगी थी अस्ताचलगामी सूर्य की अंतिम किरण वृक्षों की पत्तियों से विदाई ले रही थी, एक शांत वातावरण था हम लोग धीरे-धीरे मोटर से हावड़ा की ओर आ रहे थे।

रह-रहकर छोटा जादूगर स्मरण हो आता था। तभी सचमुच वह एक झोंपड़ी के पास कंबल कंधे पर डाले मिल गया। मैंने मोटर रोककर उससे पूछा, “तुम यहाँ कहाँ” ?

“मेरी माँ यहीं है न! अब उसे अस्पताल वालों ने निकाल दिया है।” मैं उतर गया। उस झोंपड़ी में देखा तो एक स्त्री चिथड़ों से लदी हुई काँप रही थी।

छोटे जादूगर ने कंबल ऊपर से डालकर उसके शरीर से चिपटते हुए कहा, “माँ” !

मेरी आँखों से आँसू निकल पड़े।

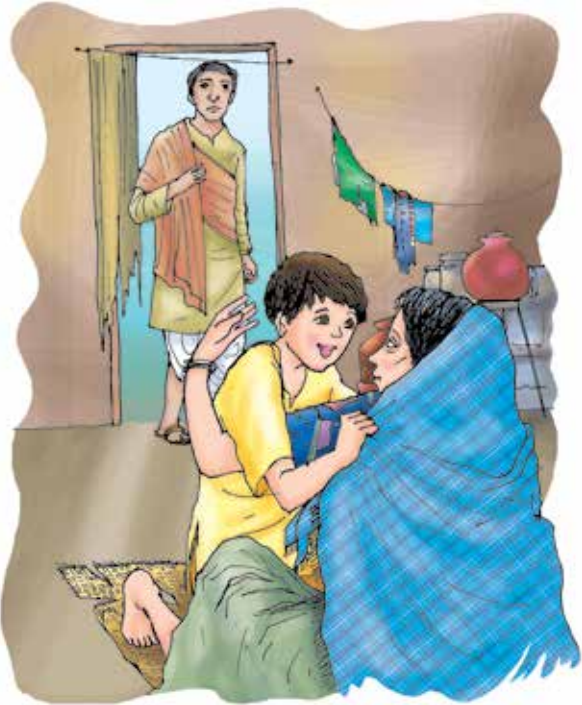
बड़े दिन की छुट्टी बीत चली थी। मुझे अपने ऑफिस में समय से पहुँचना था कलकत्ते से मन ऊब गया था फिर भी चलते-चलते एक बार उस उद्यान को देखने की इच्छा हुई। साथ-ही-साथ जादूगर भी दिखाई पड़ जाता तो और भी . . . मैं उस दिन अकेले ही चल पड़ा जल्द लौट आना था।

दस बज चुके थे। मैंने देखा कि उस निर्मल धूप में सड़क के किनारे एक कपड़े पर छोटे जादूगर का रंगमंच सजा था। मैं मोटर रोककर उतर पड़ा। वहाँ बिल्ली रूठ रही थी, भालू मनाने चला था, ब्याह की तैयारी थी और यह सब होते हुए भी जादूगर की वाणी में वह प्रसन्नता की तरी नहीं थी जब वह औरों को हँसाने की चेष्टा कर रहा था, तब जैसे स्वयं काँप जाता मानो उसके रोएँ रो रहे थे। मैं आश्चर्य से देख रहा था खेल हो जाने पर पैसा बटोरकर उसने भीड़ में मुझे देखा। वह जैसे क्षणभर के लिए स्फूर्तिमान हो गया मैंने उसकी पीठ थपथपाते हुए पूछा, “आज तुम्हारा खेल जमा क्यों नहीं?”

“माँ ने कहा है कि आज तुरंत चले आना मेरी अंतिम घड़ी समीप है।” अविचल भाव से उसने कहा।

“तब भी तुम खेल दिखलाने चले आए!” मैंने कुछ क्रोध से कहा मनुष्य के सुख-दुःख का माप अपना ही साधन तो है उसके अनुपात से वह तुलना करता है।

उसके मुँह पर वही परिचित तिरस्कार की रेखा फूट पड़ी।



14/ कहो कहानी

उसने कहा, “क्यों न आता?”

और कुछ अधिक कहने में जैसे वह अपमान का अनुभव कर रहा था।

क्षणभर में मुझे अपनी भूल मालूम हो गई। उसके झोले को गाड़ी में फेंककर, उसे भी बैठाते हुए मैंने कहा, “जल्दी चलो।” मोटरवाला मेरे बताए हुए पथ पर चल पड़ा।

कुछ ही मिनटों में, मैं झोंपड़े के पास पहुँचा जादूगर दौड़कर झोंपड़े में माँ-माँ पुकारते हुए घुसा मैं भी पीछे था, किंतु स्त्री के मुँह से, ‘बे . . .’ निकलकर रह गया उसके दुर्बल हाथ उठकर गिर गए जादूगर उससे लिपटा रो रहा था। मैं स्तब्ध था। उस उज्ज्वल धूप में समग्र संसार जैसे जादू-सा मेरे चारों ओर नृत्य करने लगा।



3



क्यों-क्यों लड़की

– महाश्वेता देवी

छोटी-सी लड़की थी वह, करीब दस साल की। एक बड़े-से साँप का पीछा कर रही थी। मैं उसके पीछे भागी, “ना मोड़ना, ना।”

“क्यों”? उसने पूछा।

“वो कोई धामन-वामन नहीं है, नाग है, नाग” !

“तो नाग को क्यों न पकड़ूँ”?

“अरे काट लेगा” !

मैं उसे ऑफिस तक लाई। वहाँ उसकी माँ खीरी एक टोकरी बुन रही थी।

“चलो थोड़ा आराम कर लो” मैंने कहा।

“क्यों?”

“क्यों? थकी नहीं हो क्या”?



16/ कहो कहानी

मोइना ने सिर हिलाया, “बाबू की बकरियाँ कौन घर लाएगा? और लकड़ी लाना, पानी लाना, ये सब कौन करेगा?”

खीरी ने कहा, “बाबू ने जो चावल भेजा है, उसके लिए उसे धन्यवाद देना न भूलना।”

“क्यों? क्यों दूँ धन्यवाद उसे? उसकी गोशाला धोती हूँ, हजारों काम करती हूँ उसके लिए कभी धन्यवाद देता है मुझे? मैं क्यों उसे धन्यवाद दूँ?”

मोइना अपने काम पर भाग गई। खीरी सिर हिलाती रह गई। ऐसी बच्ची नहीं देखी कभी। बस कहती रहती है ‘क्यों? क्यों?’ गाँव के पोस्टमास्टर ने तो उसे ‘क्यों-क्यों लड़की’ का नाम दे रखा है।

“मुझे तो अच्छी लगती है मोइना।”

“इतनी ज़िद्दी है कि एक बात पकड़ ले तो उससे हटती नहीं।”

मोइना आदिवासी लड़की थी, शबर जाति की। शबर लोग गरीब और भूमिहीन थे। बाकी शबर लोग कभी शिकायत करते सुनाई नहीं देते थे, सिर्फ मोइना ही थी जो सवाल पर सवाल करती जाती।

“क्यों मुझे मीलों चलना पड़ता है नदी से पानी लाने के लिए? क्यों रहते हैं हम पत्तों की झोंपड़ी में? हम दिन में दो बार चावल क्यों नहीं खा सकते?”

मोइना गाँव के बाबुओं की बकरियाँ चराने का काम करती, पर न तो वह अपने आप को दीन-हीन समझती, न ही मालिकों का अहसान मानती। वह अपना काम करती, घर आ जाती और बुदबुदाती रहती, “क्यों उनका बचा-खुचा, खाऊँ मैं? मैं तो बढ़िया खाना बनाऊँगी शाम को। हरे पत्ते और चावल और मिर्ची वाली और सारे घर वालों के साथ बैठ कर खाऊँगी।”

वैसे शबर लोग आमतौर पर अपनी लड़कियों को काम करने नहीं भेजते हैं, पर मोइना की माँ एक पैर से लँगड़ाती थी वह ज़्यादा चल-फिर नहीं सकती थी। उसके पिता दूर जमशेदपुर काम की तलाश में गए हुए थे और उसका भाई गोरो जलाऊ लकड़ी लाने जंगल जाता था। सो, मोइना को भी काम पर जाना पड़ता था।

उस अक्टूबर में, मैं समिति के साथ वहाँ पूरा एक माह रुकी। एक सुबह मोइना ने घोषणा की कि वह समिति वाली झोंपड़ी में मेरे साथ रहेगी।



“बिल्कुल नहीं”, खीरी ने कहा।

“क्यों नहीं, इतनी बड़ी झोंपड़ी है एक बुढ़िया को कितनी जगह चाहिए?”

“तुम्हारे काम का क्या होगा?”

“काम के बाद आया करूंगी।”

और वह एक जोड़ी कपड़े और एक नेवले का बच्चा लिये आ पहुँची।

“ये बस ज़रा-सा खाता है और बुरे साँपों को दूर भगा आता है,” उसने कहा,
“अच्छे वाले साँपों को मैं पकड़ कर माँ को दे देती हूँ”

हमारी समिति की शिक्षिका मालती बोनाल ने मुझसे कहा, “आप तो तंग आ जाएँगी इसकी 'क्यों-क्यों' सुनते हुए” और वाकई, वह अक्तूबर ऐसा बीता कि पूछो मत! “क्यों मुझे बाबू की बकरियाँ चरानी पड़ती हैं? उसके लड़के खुद ही कर सकते हैं।

मछलियाँ बोल क्यों नहीं पातीं? अगर कई सारे तारे सूरज से भी बड़े हैं तो वे इतने छोटे क्यों नज़र आते हैं? हर रात को तुम सोने से पहले किताबें क्यों पढ़ती हो?”



“क्योंकि किताबों में तुम्हारी 'क्यों-क्यों' के जवाब मिलते हैं।”



इस बार मोइना चुप रही, उसने कमरा ठीक-ठाक किया। फूलों वाले झाड़ को पानी दिया और नेवले को मछली दी फिर उसने कहा, “मैं पढ़ना सीखूँगी और अपने सारे सवाल के जवाब ढूँढ़ निकालूँगी।”

जो-जो वह मुझसे सीखती, वह बकरियाँ चराते समय दूसरे बच्चों को बताती—“कई तारे तो सूरज से भी बड़े हैं सूरज पास है इसलिए बड़ा दिखता है। मछलियाँ हमारी तरह बातें नहीं करती। मछलियों की अपनी भाषा है, जो सुनाई नहीं देती। तुम्हें पता है, पृथ्वी गोल है।”

एक साल बाद जब मैं उस गाँव में दुबारा पहुँची तो सबसे पहले सुनाई दी मोइना की आवाज़। “स्कूल क्यों बंद है?”—समिति के स्कूल के अंदर एक मिमियाती बकरी को अपने साथ घसीटते हुए उसने मालती को ललकारा।

“क्या मतलब है तुम्हारा, क्यों बंद है?”

“मैं भी क्यों न पढ़ूँ।”

“तो तुम्हें रोक कौन रहा है?”

“पर कोई कक्षा ही नहीं लगी।”

“स्कूल पूरा हो चुका था।”

“क्यों?”

“तुम जानती हो मोइना, मैं सुबह नौ से ग्यारह बजे तक कक्षा लगाती हूँ।”

मोइना ने पाँव पटक कर कहा, “तुम समय बदल क्यों नहीं सकती? मुझे बाबू की बकरियाँ चरानी होती हैं, सुबह, मैं तो सिर्फ़ ग्यारह बजे के बाद ही आ सकती हूँ, तुम पढ़ाओगी नहीं तो मैं सीखूँगी कहाँ से? मैं बूढ़ी माँ को बता दूँगी कि बकरी चराने वाले या गाय चराने वाले, हम में से कोई भी नहीं आ सकेगा, अगर स्कूल का समय नहीं बदला तो।”

तभी उसने मुझे देखा और अपनी बकरी ले भाग खड़ी हुई।

शाम को मैं मोइना की झोंपड़ी पर गई। चौके की अंगार के पास मजे-से बैठी मोइना अपनी छोटी बहिन और बड़े भाई को बता रही थी, “एक पेड़ काटो तो दो पेड़ लगाओ। खाने के पहले हाथ धो लो, जानते हो क्यों? पेट दर्द हो जाएगा अगर नहीं धोओगे। तो तुम कुछ नहीं जानते हो, क्यों? क्योंकि तुम समिति की कक्षा में नहीं जाते।”

तुम्हें क्या लगता है, गाँव में जब प्राइमरी स्कूल खुला तो उसमें दाखिल होने वाली पहली लड़की कौन थी?— मोइना

मोइना अब अठारह साल की है। वह समिति के स्कूल में पढ़ाती है। अगर तुम उसके स्कूल के पास से गुज़रोगे तो निश्चित ही तुम्हें उसकी बेचैन आवाज़ सुनाई देगी।

“आलस मत करो। सवाल करो मुझसे। पूछो, क्यों मच्छरों को खत्म कराना चाहिए, क्यों ध्रुवतारा हमेशा उत्तरी आकाश में ही रहता है?”

और दूसरे बच्चे भी अब सीख रहे हैं पूछना —“क्यों?”

वैसे मोइना को पता नहीं है कि मैं उसकी कहानी लिख रही हूँ। अगर उसे बताया जाए तो कहेगी, “क्यों? मेरे बारे में क्यों?”





अंतरिक्ष-सूट में बंदर

— अमृतलाल नागर

आकाश के अनगिनत तारों में हमारी धरती की तरह ऐसी बहुत-सी धरती हैं, जिनकी सभ्यता शायद हमसे बड़ी-चढ़ी हुई है। एक जगह तो नन्हे-मुन्ने बच्चे तक अंतरिक्ष की सैर किया करते हैं उन्होंने ऐसे अंतरिक्ष-सूट बना लिए हैं, जिसमें छोटी किंतु बड़ी ही शक्तिशाली मशीनें लगी हुई हैं।

नन्हे-नन्हे ट्रांजिस्टरों जैसे रॉकेट लगे हुए हैं। बच्चे उसे पहनकर मशीनें चलाते हुए आकाश में लाखों मील की सैर बड़ी आसानी से कर लिया करते हैं। उन्हीं में एक लड़की थी। उसकी आयु आठ-नौ साल से अधिक न थी, पर वह बड़ी तेज़ और साहसी थी। अपने स्कूल की अंतरिक्ष दौड़ों में वह कई बार फ़र्स्ट आ चुकी थी और छुट्टियों में अक्सर वह

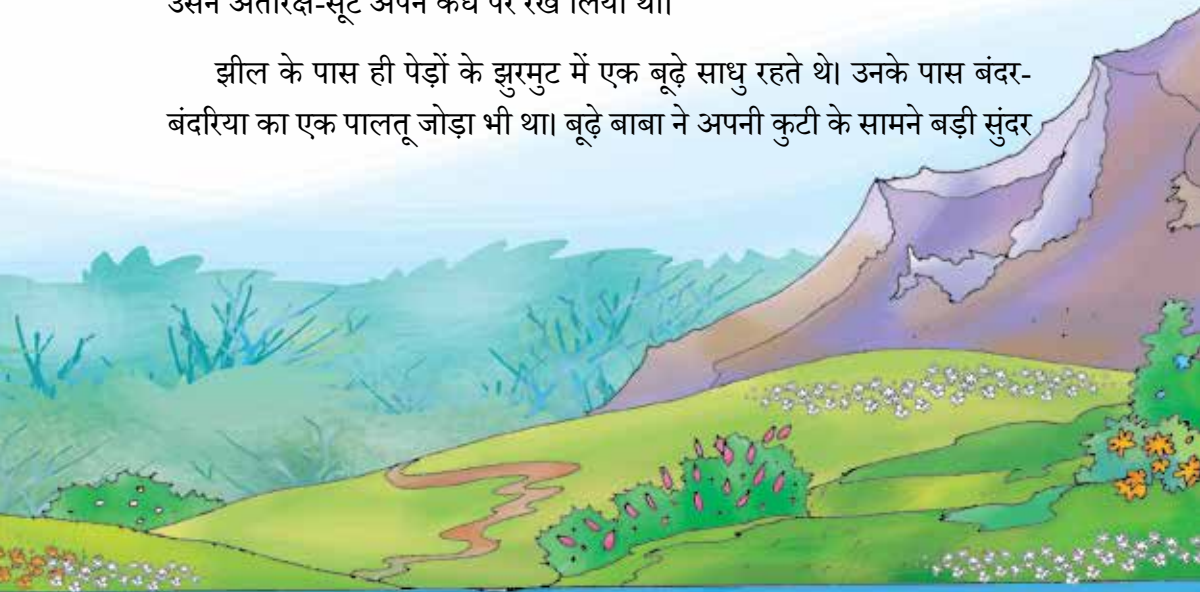


इतनी-इतनी दूर उड़ा करती थी, जितनी दूर तक उस दुनिया के बड़े-बड़े उड़ाकू भी नहीं गए होते थे।

एक दिन अपना अंतरिक्ष-सूट पहनकर वह लड़की उड़ी और खेल के जोश में अपनी उड़ान की गति तेज करते-करते आकाश में ऐसी जगह पहुँच गई, जहाँ लाखों मील तक घना अंधकार छाया था। बस अँधेरा ही अँधेरा, घटाटोप अँधेरा! अँधेरे के कारण वह लड़की घबरा तो अवश्य गई पर उसने हिम्मत न हारी। अपने सूट में लगी नन्ही शक्तिशाली मशीनों की सहायता से पूरी स्पीड में, यानी एक सेकेंड में पाँच हजार किलोमीटर की उड़ान भरते हुए दो घंटे में आखिरकार उसने वह अंधकार पार कर ही लिया।

संयोग से वह हमारी पृथ्वी पर आ गई और कश्मीर में अमरनाथ के पास एक झील के किनारे उतरी। वह लड़की बेहद थक गई थी और नई दुनिया में आने के कारण कुछ घबराई हुई थी। फिर भी, आसपास के दृश्य देखकर वह बड़ी खुश हुई। सुंदर झील देखी तो उसको नहाने की इच्छा हुई। एक चट्टान की आड़ में अपना अंतरिक्ष-सूट रखकर वह झील में नहाने लगी। उसकी दुनिया में जलवायु तो लगभग हमारी दुनिया के जैसी ही थी, पर वहाँ का पानी यहाँ जैसा निर्मल और शीतल नहीं होता था। हवा में भी ऐसी बहार नहीं होती थी। इतने चटक रंग के सुंदर सुगंधित फूल भी उसने पहली ही बार देखे थे। भोजन की तलाश में वह आसपास भटकने लगी। उसने अंतरिक्ष-सूट अपने कंधे पर रख लिया था।

झील के पास ही पेड़ों के झुरमुट में एक बूढ़े साधु रहते थे। उनके पास बंदर-बंदरिया का एक पालतू जोड़ा भी था। बूढ़े बाबा ने अपनी कुटी के सामने बड़ी सुंदर



और प्यारी-प्यारी एक छोटी लड़की को भटकते देखा तो उठकर आए और उससे पूछने लगे, “बेटी, कहाँ से आई हो?”



वह लड़की उनकी बोली तो नहीं समझी, पर बात समझ गई। आकाश की ओर संकेत करके उसने कहा कि परलोक से आई हूँ और भूखी हूँ। बूढ़े बाबा भी आकाश की ओर वाले उसके इशारे को तो नहीं समझे, पर भूख की बात समझ गए। तुरंत कुटी में से मीठे फल ले आए। लड़की खुशी से खाने लगी। बूढ़े बाबा ने उसके लिए तुरंत अपनी गाय दुही और दूध ले आए। लड़की को बड़ा स्वाद-सुख मिला। बोली न समझने पर भी इशारों से खूब हँसाइयाँ हुईं। बाबा ने बंदर-बंदरिया के खेल दिखलाकर उसको खूब हँसाया।

लड़की अब अपनी दुनिया, अपने घर जाने के लिए अंतरिक्ष-सूट पहनने लगी यह अजब पोशाक देखकर बाबा को बड़ी हैरानी हुई। उन्हें शायद यह अचरज लगा होगा कि यह जो अभी प्यारी-प्यारी लड़की जैसी लग रही थी, एकाएक बेदुम की विचित्र बंदरिया कैसे बन गई!

उस 'बंदरिया' ने एकाएक अपने सूट में टँके हुए एक नन्हे से चक्के को घुमाया और सर्र से ऊपर उठ गई। बाबाजी को अब लड़की के उस संकेत का सही अनुमान लगा, जो उसने अपने घर का पता बतलाने के लिए आकाश की ओर संकेत कर किया था।

खैर! लड़की पाँच-छह घंटे के बाद अपनी दुनिया में पहुँच गई। फिर तो उसे ऐसा चस्का लग गया कि हर छुट्टी के दिन वह बाबाजी के पास उड़ आती और मजे से झील में तैरती, फल खाती और बंदर-बंदरिया के तमाशे देखकर बाबाजी के साथ खूब हँसा करती थी। आते-जाते वह थोड़ी-बहुत हिंदी भी सीख गई।



बंदर उस लड़की को अपना अंतरिक्ष-सूट उतारते, पहनते और नन्हा चक्का घुमाकर उड़ते हुए बराबर गौर से देखा करता था। एक दिन जब लड़की नहा रही थी और बाबाजी फल तोड़ने गए थे, बंदर ने वह अंतरिक्ष-सूट पहन लिया और चक्के को घुमाते ही उड़ने लगा। लड़की ने नहाते हुए यह देखा और बहुत घबराई बाबाजी ने भी देखा और परेशान होकर दौड़ते हुए आए।

बंदर आसमान में उड़-उड़कर परेशान हो रहा था और दूसरे पंछियों को भी अपनी उलटी-सीधी उड़ानों से परेशान कर रहा था। कभी चक्का घुमाते हुए ही सर्र से ऊपर जाता और फिर नीचे आता, कभी घबराहट में



दूसरा चक्का घुमाता और उलट जाता। वह भी घबरा रहा था और घबराहट में दोनों चक्के घुमाकर परेशान भी हो रहा था। कभी सर्र से ऊपर, कभी सर्र से नीचे, कभी खट से सीधा, कभी पट से उलटा!

लड़की को यह घबराहट थी कि अगर उसकी मशीनें बिगड़ गईं तो वह अपने घर कैसे पहुँचेगी? वह रोने लगी। बाबाजी ने उसे दिलासा दी और बंदर को नीचे लाने की तरकीब सोचने लगे।



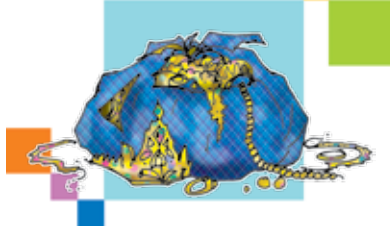
24 / कहो कहानी

उन्होंने बंदरिया के गले में रस्सी का फंदा डालकर पेड़ की ऊँची डाल से बाँध दिया और उसे सड़ासड़ संटिया मारने का नाटक करने लगे। बँदरिया ज़ोर-ज़ोर से चिल्लाने लगी। बंदर उसकी आवाज़ सुनकर घबरा गया और उलटे-सीधे चक्के घुमाकर नीचे आने में सफल हुआ। मशीनों के कल-पुर्जे सौभाग्य से ठीक थे। बाबाजी ने लड़की के सूट में टंगे झोले में फल रख दिए और वह उड़ गई।

उस दिन बंदरलीला के कारण उसे घर पहुँचने में काफ़ी देर हो गई। उसके माँ-बाप ने जब पूछा, तब उसने सच-सच बतला दिया और अपने घरवालों को हमारी दुनिया के फल खिलाए। वे सब बड़े प्रसन्न हुए। अगली छुट्टी पड़ने पर वे अपनी बेटी के साथ बाबाजी से मिलने आए। अपने यहाँ के मेवे खिलाए। पर हमारे फल उनके मेवों से अधिक स्वादिष्ट थे। चलते समय लड़की के माता-पिता ने बाबाजी से कहा कि हमारी दुनिया की सैर करने चलिए। वे उनके लिए एक अंतरिक्ष-सूट भी अपने साथ लाए थे, परंतु बाबाजी ने लड़की के द्वारा उसके पिता से कहा कि जब उनके, भारत देश के बच्चे बड़े होकर ऐसा ही सूट ईजाद कर लेंगे, वह तभी आएँगे।

बच्चो! बाबाजी के लिए ऐसा सूट बना दो।





वारिस

– रामचंद्र भावे

पिताजी का व्यवहार न जाने क्यों विचित्र-सा लगा। चुप बैठा मैं उनका मुँह ताकने लगा। एक ज़माने में पिताजी गाँव की अधिदेवी भवानी के मंदिर के भक्त हुआ करते थे। ऐसे पिता धर्म-विमुख तो नहीं हो सकते। पर जहाँ तक मैं जानता हूँ कई दिनों से पिताजी मंदिर की ओर नहीं गए। घर में भी माँ के आग्रह पर ही पिताजी पूजा-पाठ और संध्योपासना करते दीखते। सरसरी तौर पर लगता था कि पूजा-पाठ में उनकी कोई आस्था नहीं बची है। यदा-कदा रिश्तेदार घर आते तो पिताजी उनसे भी ज़्यादा बात नहीं करते। सब्ज़ी में नमक न हो तो भी पिताजी अपना खाना खाकर उठ जाते। लगता था कि पिताजी हँसना ही भूल गए हैं। अँधेरे में अकेले बैठकर सोचते रहना ही पिताजी का खास शौक है, या उनके लिए यही अनिवार्य है! दूसरों की मानसिक स्थिति को समझने की क्षमता मुझमें आ गई है। युवा बेटा एक दोस्त के समान होता है,



माँ पूछती, “आपको क्या हो गया है?” यह पूछ-पूछकर वह हार चुकी है। मैं, उनका बेटा कॉलेज की पढ़ाई समाप्त करने वाला हूँ। मानसिक और शारीरिक रूप से सुदृढ़ हूँ। यह सोचकर पिताजी मेरे साथ कुछ बात तो कर ही सकते हैं। मगर नहीं। कई रहस्य उन्होंने अपने अंदर छिपा रखे हैं। बाहर से शांत समुद्र के समान दीखते हैं, अंदर बड़वानल प्रज्वलित हो रहा है, ऐसा लगा।

आखिर पिताजी ने कहा, “यहाँ की रामायण से तुम्हें क्या लेना-देना है? मेरी बात सुनो! पहले यहाँ का मोह छोड़, पढ़ाई खत्म करके बैंगलूर या मुंबई में नौकरी पकड़ लो। तुम ही तो हमारे सर्वस्व हो, इकलौते बेटे हो। हमें कोई रिश्तेदारों की तो तकलीफ़ है नहीं। और फिर एक दिन यहाँ की सारी जायदाद बेचकर अपनी माँ को भी अपने साथ ले जाना।”

“और आप?”

“मैं और कितने दिन जीवित रहूँगा?” पिताजी की बात में व्यथा थी। “मैं जब तक ज़िंदा हूँ, इसी घर में रहूँगा। मगर तुम्हारा तो यहाँ रहना ज़रूरी नहीं है।”

पिताजी इसी तरह बात करते थे। इसका अर्थ क्या है?

मैं बैंगलूर में शामणा के घर में रहता था, जो पिताजी के दोस्त हैं। माँ कभी-कभी किसी से फ़ोन करवाती रहती हैं।

आज भी यकायक फ़ोन आया—दो दिन के लिए घर आ जाओ, तुम्हारे पिता की हालत ठीक नहीं है—रात की बस पकड़ी और घर आ गया। देखा, पिताजी ठीक-ठाक हैं। उम्र ने अपना भयानक असर तो डाल ही दिया था। मुझे देख माँ को कुछ तसल्ली हुई।

“तुम्हें देखे छह महीने हो गए थे।” उनकी आँखों में जो आँसू थे, उन्हें देख मैं आगे बोल नहीं सका। उनकी ममता के आगे मैं खामोश हो गया।

फिर मैं गाँव में घूमने-फिरने चला गया। लौटते वक्त एक खाली ज़मीन पर मेरी नज़र पड़ी, जो हमारे घर के बगल में ही थी। वहाँ पर घास, बबूल और दूसरे कँटीले पौधे उगे हुए थे। पिताजी ने इन्हें क्यों साफ़ नहीं कराया है, समझ में नहीं आया। यह ज़मीन मुख्य सड़क से मिली हुई थी। अगर यहाँ पर कमरे बना कर किराए पर दे दिए



होते तो काफ़ी पैसे मिलते। घर के कमरों को बढ़ाकर बड़ा किया जा सकता है, हॉल भी बनाया जा सकता है। आजकल पूर्णिमा और अमावस के दिन दूर-दूर से लोग भवानी के दर्शन के लिए आते हैं। यह बात मैंने पिताजी से कही।

“अब इतने पैसे मेरे पास कहाँ हैं।” पिताजी के उत्तर में उदासीनता स्पष्ट झलक रही थी। हर बात में पिताजी ऐसी ही उदासीनता और रिक्तता दिखाते थे। यह मुझसे सहा नहीं जाता।

“उस ज़मीन को बेच क्यों नहीं देते?” मैंने कहा।

“यह नहीं हो सकता।”

“क्यों?”

“हर सवाल का जवाब नहीं दिया जा सकता।”

“बताइए, मुझे जानना है।”

“तो सुनो... वह... वह हमारी ज़मीन नहीं है।”

“तो किसकी है?”

“दो जनों की है।”



“तो अब 'वे' कहाँ हैं?”

“मर गए, कई साल हो चुके हैं।”

“उनके कोई वारिस-रिश्तेदार?”

“तुम तो एक ही बार में कई सवाल पूछ रहे हो?”

पिताजी का गुस्सा धीरे-धीरे बढ़ रहा था। आखिर उन्होंने शांत होकर कहा, “उनके अब कोई रिश्तेदार नहीं रहे, ऐसा लगता है। किसी एक सौदे के दरमियान यह जायदाद मेरे हाथ आ गई। जब तक मैं ज़िंदा रहूँगा, इसकी हिफ़ाज़त करूँगा। कोई रास्ता भी नहीं है। मेरे बाद, तुम जो चाहो, कर लेना।”

इतना बोलने के बाद पिताजी हाँफने लगे और पसीना-पसीना हो गए।

मैं बात और आगे बढ़ाकर उनके मन को दुख नहीं पहुँचाना चाहता था, इसलिए उठकर अंदर आ गया। रसोईघर में माँ मेरी राह देख रही थीं।

उन्होंने मुझे पास बुलाकर प्यार से बिठाया और पीठ पर हाथ फेरा।

फिर डिबिया से दो कोडुबले (एक खाद्य वस्तु) निकाले और मुझे देती हुई बोलीं, “क्या कहा तुमने उनसे?” उन्हें भी दुख हुआ था कि मैंने पिताजी को सताया है।

“देखो माँ, पिताजी मुझ से ठीक से बात ही नहीं करते।” मैंने नाराज़गी जताई।

“हाँ!” माँ ने गहरी साँस ली और कहा, “ये इसी प्रकार निर्लिप्त हैं, पिछले कई सालों से।”

मैंने तुरंत चेहरा उठाया। यहाँ कोई रहस्य है! “क्या कारण है माँ?”

“बिना कारण ही!” माँ की असहिष्णुता बढ़ी, “किसी ने गलती की है और ये उम्र-कैद की सज़ा भुगत रहे हैं।”

“ठीक से कहो, माँ... तुम भी पिताजी के समान पहेली न बुझाओ।”

“मुझे जो कुछ मालूम है, बता रही हूँ। तुम्हारे सामने न कहूँ तो और किसके सामने कहूँ?” माँ ने आँसू बहाते हुए कहा, “गाँव के सिरे पर जो भवानी माँ का मंदिर है, वह पुराने ज़माने का है। जो भी राजा हुए उन सभी राजाओं ने देवी की आराधना



की और कृतार्थ हुए। आज भी दूर-दूर से भक्त लोगों की भीड़ दर्शन करने आती है। इसी मंदिर में एक बार चोरी हो गई। देवी के शरीर पर जो लाखों रुपए के गहने थे, उनकी चोरी कर स्वयं पुजारी भाग निकला। उस समय तुम्हारे पिताजी मंदिर के ट्रस्टी थे। रिवाज़ के अनुसार पुलिस आई। काफ़ी दिन तक मुकदमा चला। पिताजी ने विवश होकर ट्रस्टी पद से इस्तीफ़ा दे दिया। पुजारी की पत्नी अपमान सह न सकी और उसने गले में फंदा डालकर आत्महत्या कर ली। पुजारी का छोटा बेटा अनाथ हो गया और वह कहीं चला गया।”

“मगर उस चोर पुजारी का अभी तक पता नहीं चला?”

“हाँ, लाखों रुपए जब हाथ में हों तो फिर वह इधर क्यों आएगा? वह धूर्त कहीं दूर शायद आराम से जी रहा है।” मेरी बात के लिए माँ के उत्तर में नाराज़गी थी।

परीक्षा का भूत सिर पर सवार है, इसी डर से मैं पढ़ाई कर रहा था, तभी अचानक पिताजी का खत मिला, “इस बार ठीक से बारिश नहीं हुई, इसलिए फसल अच्छी नहीं है। सुपारी के पेड़ों को बीमारी लग गई है।” आगे लिखा था, “मैं तुम्हारी भलाई के लिए ही लिख रहा हूँ। मेरी सारी जायदाद के तुम ही वारिस हो, यह सच है। मगर तुम्हारा यहाँ रहने के लिए आना उचित नहीं है। खेती-बाड़ी, बाग-बगीचे का काम तुमसे होता नहीं है। गाँव की जायदाद पर भरोसा करके गुज़ारा करना मुश्किल है। नौकर-चाकर नहीं मिलते, पास-पड़ोस वाले मुश्किलें खड़ी कर देते हैं। फ़सल की लूट होती है। तुम तो नगर के जीवन से हिलमिल गए हो। तुम वहाँ पढ़ाई के साथ-साथ कोई काम ढूँढ़ लो। मुझे मालूम है कि नगर का जीवन मुश्किल है। तुम शादी करने वाले हो, इसलिए नगर में कोई फ़्लैट खरीद लो। पैसे की चिंता मत करो। अगर पैसे कम हुए तो खेत और बाग को एक-एक करके बेचा भी जा सकता है। मगर जब तक मैं ज़िंदा हूँ, यह घर नहीं बेचूँगा। मेरे बाद तुम इसे बेच देना और इस गाँव का मोह सदा के लिए छोड़ देना।”

मैं किंकर्तव्यविमूढ़ हो गया। मैंने इतनी पढ़ाई की है, मगर पिताजी के मन को समझ नहीं पाया। गाँव के बारे में, लोगों के बारे में पिताजी की उदासीनता बढ़ गई, ऐसा लगा। एक समय में पिताजी मंदिर के ट्रस्टी रहे हैं, इसी गलती के लिए उन्होंने



पुलिस से शायद मुश्किलों का सामना किया होगा। तब उनकी मदद के लिए कोई भी नहीं आया होगा। शायद इसीलिए वे भगवान और लोगों से दूर ही रहना चाहते हैं। मगर ऐसी बात है तो पिताजी जायदाद बेच कर हमेशा के लिए गाँव छोड़ सकते थे। उन्होंने ऐसा क्यों नहीं किया? वे कहते रहते हैं, “जब तक ज़िंदा हूँ, इसी घर में रहूँगा। इस घर से ऐसा मोह? सब कुछ सहकर, अपमान झेलते हुए, आखिरी दम तक वहाँ रहने की आवश्यकता ही क्या है? ऐसी क्या मजबूरी है?”

परीक्षा समाप्त होते ही मैं तुरंत गाँव आया। पिताजी पहले से भी कमजोर हो गए थे। अगले दाँत गिर गए थे, ललाट पर झुर्रियाँ बढ़ गई थीं, शरीर थोड़ा झुक गया था। पिताजी पर उम्र ने बिना संकोच के आक्रमण किया है, या ऐसा भी हो सकता है कि पिताजी हमेशा दुखी रहते हैं और उनकी निरुपाय मनःस्थिति ही उनकी इस हालत का कारण है।

“पिताजी, आप मेरे साथ बैंगलूर चलिए। वहाँ किसी अच्छे डॉक्टर को दिखाएँगे।” मैंने कहा।

“मुझे क्या हुआ है, बेटा?” फिर वही दूर भागने की बात।

पिताजी की हालत देख माँ भी बहुत डरी हुई थीं। जब पिताजी को पता चला कि मैं परीक्षा में पास हो गया हूँ, तो उन्होंने मुझे एक दिन भी गाँव में रहने नहीं दिया। “जाओ, नौकरी ढूँढो—मैंने तो शामणा को पत्र लिख दिया है।”

उनके आग्रह पर मैं फिर बैंगलूर चला गया। मेरे लिए शामणा जी ने पाँच-छह जगह कोशिश की थी। उनके साथ वहाँ गया। एक महीने में कहीं-न-कहीं नौकरी ज़रूर मिल सकती है, ऐसा विश्वास हुआ। मगर तभी एक दिन सवेरे शामणा जी ने कहा, “जल्दी गाँव जाओ, तुम्हारे पिता को...”

“क्या हुआ?”

“कहते हैं, ब्रेन हैमरेज है।”

मैं बस पकड़ कर गाँव चला आया। मगर काफ़ी देर हो चुकी थी—पिताजी रात भर बेहोशी की हालत में कराहते रहे और सुबह होते ही दम तोड़ दिया।



कोई काम नहीं था। यूँ ही बैठे-बैठे ऊब गया था, इसलिए कुछ दूर तक घूमकर आने की इच्छा हुई। मैं चल पड़ा। नदी के ढलान पर बाग के कई हिस्से नष्ट हो गए थे, खेत भी खाली पड़ा था। देखकर बड़ा दुख हुआ।

दो महीने बीत गए। तब तक पिताजी की अलमारी से सारे कागजात निकालकर उनकी पूरी तरह से जाँच करता रहा, बैंक हिसाब, बचत सर्टिफिकेट—सब कुछ देखा। फिर मुझ में साहस भी आ गया। इच्छा हुई कि नौकरी करने के बजाय गाँव में ही ठहर जाऊँ और खेती करूँ, यद्यपि यह पिताजी की इच्छा के विरुद्ध था।

दो-चार दिन हितैषियों से मदद ली। बाग और खेत पर जो हानि हुई थी, उसका अंदाजा लगाया। मगर अभी समय था। बाग में जो कूड़ा-करकट पड़ा था, उसे साफ़ कराना है, पानी के रास्ते को ठीक करना है, फिर और कुछ सुपारी, केले और नारियल के पौधे लगा कर गोबर डालना है। ऐसा करने से भविष्य में काफ़ी मुनाफ़ा मिलने की उम्मीद है। इसी प्रकार खेत की अच्छी जुताई की गई तो सौ बोरा ज़्यादा धान मिल सकता है।

मन नहीं माना कि घर के बगल की ज़मीन को यूँ ही छोड़ दिया जाए। निश्चय कर लिया कि वहाँ दो कमरे बनवाएँगे।

“तुम अपने पिताजी की इच्छा के विरुद्ध सब कुछ कर रहे हो?” माँ ने आक्षेप किया।

“माँ, हमारे पास इतनी बड़ी जायदाद है, नौकरी में क्या रखा है?” बात समझाने पर माँ भी चुप हो गई।

शुभ मुहूर्त निकलवा कर ज़मीन की पूजा की गई, फिर नींव के लिए ज़मीन खोदने का काम शुरू हुआ। मिट्टी नरम थी, इसलिए शाम तक तीन फुट खुद गई। खोदने का काम जब आगे बढ़ा तो एक पत्थर ने बाधा डाल दी। वह चट्टान नहीं





थी, यह आश्चर्य की बात थी। वह एक लंबा-चौड़ा सपाट पत्थर था। उसे बड़ी मुश्किल से हटाया गया। वहाँ सुरंग थी...

“तहखाना...तहखाना” एक मज़दूर चिल्लाया। उसे डाँटकर चुप कराया तो दूसरे ने उत्साह दिखाया, “नीचे उतर कर देखूँ?”

“नहीं, नहीं, वहाँ कोई पुराना कुआँ होगा।” मैंने कहा।

“कुआँ नहीं है जी, सीढ़ियाँ जैसी दिखाई दे रही हैं।”

मैंने भी कौतूहलवश नज़दीक जाकर ध्यान से देखा। लगा, तहखाना ही है। शायद मेरे पूर्वजों ने इस्तेमाल किया होगा।

“आज काम काफ़ी हो गया।” मैंने डपट कर कहा। सूर्य डूबने वाला था। जब अँधेरा छाने लगा, “यों ही जल्दबाज़ी नहीं करनी चाहिए। अंदर साँप-बिच्छू होंगे। बिना हवा के शायद दम घुट जाए।”



वे सब चले गए, पर मैं दसेक मिनट वहीं बैठा रहा। यह तहखाना क्यों और किसलिए? यह शंका भी हुई कि पूर्वज शायद यहाँ संपत्ति छुपाते होंगे।

रात को खाना खाते वक्त माँ से तहखाने के बारे में मैंने बात ही नहीं छेड़ी। साढ़े ग्यारह बजे तक टी.वी. देखता रहा। फिर उठा। माँ को गहरी नींद में सोया देखकर मैंने अपने सिर पर एक रुमाल बाँधा और हाथ में एक बड़ी टॉर्च ले ली। धीरे से बाहर आया। यकायक ठंडी हवा के झोंके से कँपकँपी छूट गई कोई कीड़ा 'की-की' कर रहा था, एकांत में वह आवाज़ कर्कश लगी। सीने में भय पैदा हुआ। एक पल के लिए रुका। पड़ोसी देख तो नहीं रहे, इस बात की पुष्टि के बाद धीरे-धीरे कदम बढ़ाया और उस जगह आया।

तहखाने के अंदर जाऊँ, न जाऊँ, कुछ देर तक दुविधा में पड़ा रहा। फिर ज़ोर से साँस ली और कलेजे को पत्थर बना लिया। कौतूहलवश नीचे झुका।

इतने बरसों से तहखाने में भरी हुई विषैली हवा निकल चुकी होगी और अब वहाँ ताज़ी हवा फैली हुई होगी, इस विचार के साथ लंबे-चौड़े-सपाट पत्थर पर हाथ रखकर एक पाँव सुरंग के अंदर रखा। सीढ़ी मिल गई, उस पर मज़बूती से खड़ा हो गया। धीरे से और दो सीढ़ियों को पार किया और वहीं रुककर टॉर्च से रोशनी अंदर फेंकी।



जैसा अंदाजा था, वह तहखाना ही था। लगभग बीस फुट लंबा-चौड़ा। तहखाने की ठंडी हवा ने अचानक घेर लिया और मैं काँपने लगा। अंदर का दृश्य देखकर मैं हतप्रभ रह गया। मैं जो कुछ देख रहा हूँ वह झूठ है या सच, यह विश्वास करने में भी कुछ समय लगा। फिर साहस करके बाकी सीढ़ियाँ पार कर एक कोने में जा खड़ा हुआ।

टॉर्च की रोशनी में—पिताजी के मरने के बाद उनकी पहेली जैसी बात का मतलब तहखाने में चमकने लगा।

देवी के आभूषण, जैसे मुकुट, कवच, हार, कंगन और भी न जाने क्या-क्या—सब कुछ तहखाने में बिखरे पड़े थे। उन सभी को शायद सोने, हीरे-जवाहरात से बनाया गया होगा। एक-एक पर जब रोशनी पड़ती, आँखें चौंधिया जाती थीं। इन सबके बीच पड़ा हुआ एक अनाथ अस्थिपंजर। उसके गले में रुद्राक्ष की माला, अँगुली पर पवित्र अँगूठी।

बहुत ही नज़दीक आकर ध्यान से देखा। सिर फटा हुआ था। नज़दीक ही एक बड़ा पत्थर था, जिसकी मार से शायद उसका सिर फटा था।

मेरी आँखें भर आईं। कलेजे में जोर का दर्द उठा, कई बार लंबी साँसे लीं, मगर भय और चिंता दूर नहीं हुई। किंकर्तव्यविमूढ़ पीछे हटता गया और सीढ़ी पर बैठ गया। बाईस साल पहले जो घटना घटी थी, उस भयानक अंधकार में भी आँखों के सामने आकर खड़ी हो गई। कुछ नहीं सूझा। मैं हतप्रभ था। मैं किसका वारिस हूँ? पिताजी के पुण्य कार्यों का या पाप कर्म का? और वह वारिसपन यहीं खत्म कर दूँ, या अपने बेटे-पोतों के सिर भी बाँधूँ? ये सवाल बिना जवाब के मेरे सामने नाचने लगे।





कितनी ज़मीन

– लेव टॉलस्टॉय

दो बहनें थीं। बड़ी का कस्बे में एक सौदागर से विवाह हुआ था। छोटी देहात में किसान से ब्याही थी।

बड़ी का अपनी छोटी बहन के यहाँ आना हुआ। दोनों बैठीं तो बातों का सूत चल पड़ा। बड़ी अपने शहर के जीवन की तारीफ़ करने लगी, “देखो, कैसे आराम से हम रहते हैं। फैसी कपड़े और ठाठ के सामान। स्वाद-स्वाद की खाने-पीने की चीज़ें और फिर तमाशे-थियेटर, बाग-बागीचे।”

छोटी बहन को बात लग गई। अपनी बारी पर उसने सौदागर की ज़िंदगी को हेय बताया और किसान का पक्ष लिया। कहा, “मैं तो अपनी ज़िंदगी का तुम्हारे साथ अदला-बदला कभी न करूँ। हम सीधे-सादे और रूखे-से रहते हैं, तो क्या, चिंता-फिकर से तो छूटे हैं। तुम लोग



36/ कहो कहानी

सजी-धजी रहती हो, तुम्हारे यहाँ आमदनी बहुत है। लेकिन एक रोज़ वह सब हवा भी हो सकती है, जीजी।”

बड़ी बहन ने ताना देते हुए कहा, “बस-बस, पेट तो जानवर भी भरते हैं पर वह भी कोई ज़िंदगी है? तुम्हें जीवन के आराम, अदब और आनंद का क्या पता?”

छोटी ने कहा, “तो इसमें क्या हुआ? हाँ, हमारा काम चिकना-चुपड़ा नहीं है। लेकिन हमें किसी के आगे झुकने की भी ज़रूरत नहीं है। शहर में तुम हजार लालच से घिरी रहती हो।”

घर का मालिक दीना ओसारे में खड़ा औरतों की यह बात सुन रहा था। उसने सोचा कि बात खरी है। बचपन से धरती माँ की सेवा में हम इतने लगे हैं कि कोई व्यर्थ की बात हमारे मन में घर नहीं कर पाती है। बस मुश्किल है तो एक है। वह यह कि हमारे पास ज़मीन काफ़ी नहीं है। ज़मीन ख़ूब हो तो मुझे किसी की परवाह न रहे।

गाँव के पास ही ज़मींदार की मालकिन की कोठी थी। कोई तीन सौ एकड़ उनकी ज़मीन थी। उनके अपने असामियों के साथ अच्छे संबंध रहते आए थे लेकिन उन्होंने एक कारिंदा रखा जो पहले फ़ौज में था। उसने आकर लोगों पर जुर्माने ठोकने शुरू कर दिए।



दीना का यह हाल था कि वह बहुतेरा करता पर कभी तो उसका बैल ज़मींदार की चरी में पहुँच जाता, कभी गाय बगिया में चरती पाई जाती। हर बार दीना को जुर्माना देना पड़ता।

जब ज़मींदार की ज़मीन बिकने लगी, दीना ने चालीस एकड़ ज़मीन का एक टुकड़ा पसंद किया। जिसके कुछ हिस्से में पेड़ भी खड़े थे। मालकिन के पास उसका सौदा करने पहुँचा। सौदा पट गया और वहीं के वहीं नकद उसने साई दे दी। फिर कस्बे में जाकर लिखा-पढ़ी पक्की कर ली।

अब दीना के पास अपनी निजी ज़मीन थी। वह अपनी ज़मीन जोतता और बोता। ज़मीन पर चारा उगाता, फलों के पेड़ लगाता। अब वह अपने खेतों की तरफ़ जाता, लहलहाती फ़सल को निहारता, हरी घास की चरागाहों पर नज़र फैलाता तो उसका मन हर्ष से भर जाता।

दीना काफ़ी खुशहाल था। उसके संतोष में कोई कमी न रहती, अगर पड़ोसियों की तरफ़ से पूरा चैन मिल सकता। कभी-कभी उसके खेतों पर पड़ोसियों के मवेशी आ चरते। दीना ने बहुत विनय के साथ समझाया, लेकिन कुछ फ़र्क नहीं हुआ। एक अर्से तक वह धीरज रखे रहा और किसी के खिलाफ़ कार्रवाई नहीं की। लेकिन कब तक? आखिर उसका धीरज टूट गया और उसने अदालत में दरखास्त दी। नतीजा यह कि दो-तीन किसानों पर अदालत से जुर्माना हो गया। इस पर तो पास-पड़ोस के लोग दीना से कीना रखने लगे।

इस तरह दीना का अपने पड़ोसियों और अफ़सरों से मनमुटाव होने लगा। यहाँ तक कि उसके घर में आग लगाने की बातें सुनी जाने लगीं। यद्यपि दीना के पास अब ज़मीन ज़्यादा थी और ज़मींदारों में गिनती थी, पर गाँव में और पंचों में पहले-सा उसका मान न रह गया था।

इसी बीच अफ़वाह उड़ी कि कुछ लोग गाँव छोड़-छोड़कर कहीं जा रहे हैं। दीना ने सोचा मैं उनकी ज़मीन ले लूँ तो ठीक रहेगा। अब तो कुछ तंगी मालूम होती है।

एक दिन दीना घर के ओसारे में बैठा था कि एक परदेशी किसान उधर से गुज़रता हुआ उसके घर पहुँचा। उसने कहा “कि दरिया के पास से आ रहा हूँ। वहाँ नयी बस्ती बस रही है। हरेक को बीस एकड़ ज़मीन मुफ़्त मिल रही है। ज़मीन ऐसी





उम्दा है कि उस पर गेहूँ की पहली फसल जो हुई तो आदमी से ऊँची उसकी बालें गईं और इतनी घनी कि दरांत के एक काट में एक पूला बन जाए। एक आदमी के पास खाने को दाने न थे। खाली हाथ वहाँ पहुँचा। अब उसके पास दो गाएँ हैं, छह बैल और भरा खलिहान अलगा।”

दीना परिवार के साथ उस जगह पहुँच गया। जाते ही एक बड़े गाँव की पंचायत में शामिल होने की अर्जी दी। ज़मीन का पट्टा उसे सहज मिल गया। मिली-जुली ज़मीन में से उसके और उसके बाल-बच्चों के इस्तेमाल के लिए सौ एकड़ ज़मीन उसको दे दी गई। पंचायती चरागाह भी उसके लिए खुला कर दिया गया। दीना ने ज़रूरी इमारतें अपने लिए खड़ी कीं और मवेशी खरीद लिए। वह पहले से कई गुना खुशहाल हो गया। उसके पास चराई के लिए खुला मैदान-का-मैदान पड़ा था और जितने चाहे वह ढोर रख सकता था।

पहले तो वहाँ ज़मीन और मकान आदि बनवाने में वह रमा रहा। वह अपने से खुश था और उसे गर्व मालूम होता था। जब वह इस खुशहाली का आदी हो गया तो उसे लगने लगा कि यहाँ भी ज़मीन काफ़ी नहीं है, और होती तो अच्छा था।

कुछ दिन बाद एक सौदागर अपने घोड़े के दाने-पानी के लिए उसके घर आ ठहरा। उससे दीना की जो बातचीत हुई तो सौदागर ने कहा कि मैं नदी के उस पार से चला आ रहा हूँ। वहाँ इतनी ज़मीन है कि तुम महीनों चलो तो पूरी न हो।

दीना ने पूछताछ की, उस जगह कैसे पहुँचें। सौदागर ने सब बतला दिया। वह चला गया तो दीना ने भी अपनी तैयारी शुरू की। बीबी से कहा कि घर देखना-भालना और खुद एक आदमी लेकर यात्रा पर निकल पड़ा।

रास्ते में एक शहर में ठहरा, वहाँ से चाय के डिब्बे, मिठाई आदि उपहार की अन्य चीज़ें जो सौदागर ने बताई थीं, ले लीं। फिर दोनों बढ़ते गए, बढ़ते गए। चलते-चलते आखिर सातवें रोज़ वे वहाँ पहुँचे जहाँ से कोल लोगों की बस्ती शुरू होती थी। देखा तो वहाँ सौदागर ने जो बात बताई थी, वह ठीक थी। दरिया के पास ज़मीन ही ज़मीन थी। सब खाली थी। ये लोग उससे काम नहीं लेते थे। कपड़े या सिरकी के तंबू में रहते, शिकार करते, मवेशी पालते और ऐसे ही मौज करते थे। पढ़ना-लिखना सीखे नहीं थे। पर थे भले-सीधे स्वभाव के।

दीना को देखते ही वे अपने तंबूओं से निकल आए और उसके चारों तरफ़ जमघट लगाकर खड़े हो गए। उसमें से एक दुभाषिये की मारफ़त दीना ने बतलाया कि मैं ज़मीन की खातिर आया हूँ। वे लोग बड़े खुश मालूम हुए। बड़ी आवभगत के साथ वे उसे अपने सबसे अच्छे डेरे में ले गए। वहाँ कालीन पर बिछे गद्दे पर बिठाया और खुद नीचे चारों ओर घेरकर बैठ गए। उसे पीने को चाय दी। उसकी मेहमानी में बढ़-चढ़कर दावत हुई। दीना ने भी गाड़ी में से भेंट की चीज़ें निकालीं और बाँटीं। कोल लोग बड़े खुश थे। उन्होंने आपस में इस अजनबी की बाबत खूब चर्चा की। फिर दुभाषिये से कहा कि मेहमान को सब समझा दो। दुभाषिये ने कहा कि ये लोग कहना चाहते हैं कि हम आपके आने से खुश हैं। बतलाइए कि हमारे पास कौन-सी चीज़ है जो आपको पसंद है, ताकि हम उसी से आपकी खातिर कर सकें।

दीना ने जवाब दिया कि जिस चीज़ को देखकर मैं बहुत खुश हूँ, वह आपकी ज़मीन है। हमारे यहाँ ज़मीन की कमी है और वह इतनी उपजाऊ भी नहीं है। मैंने तो अपनी आँखों से यहाँ जैसी धरती दूसरी नहीं देखी। इसी बीच एक आदमी बड़ी-सी रोयेंदार टोपी पहने वहाँ आ पहुँचा। सब चुप होकर उसके सम्मान में खड़े हो गए। दुभाषिये ने कहा कि यही हमारे सरदार हैं।

दीना ने फौरन अपने सामान में से एक बड़िया लबादा निकाला और चाय का एक बड़ा डिब्बा और बहुत-सी चीज़ें सरदार को भेंट में दीं। सरदार ने भेंट स्वीकार की और अपने आसन पर आ बैठा। उसके बाद दीना की तरफ़ मुखातिब होकर कहा –

“इन भाइयों ने जो कहा, सो ठीक है, ज़मीन जो चाहे चुन लो। हमारे यहाँ इसकी कमी नहीं है।”



दीना ने कहा, “सुना है यहाँ एक सौदागर आया था उसको आपने ज़मीन दी थी और उस बाबत कागज़ पक्का कर दिया था। वैसे ही मैं चाहता हूँ कि कागज़ पक्का हो जाए।”

सरदार समझ गया।

बोला, “हाँ, ज़रूर। यह तो आसानी से हो सकता है। हमारे यहाँ एक मुंशी है, उसके साथ कस्बे में चलकर लिखा-पढ़ी पक्की कर ली जाएगी।”

दीना ने पूछा, “ज़मीन किस भाव मिलेगी?”

“हमारा भाव तो एक ही है। एक दिन के एक हजार रुपये।”

दीना समझा नहीं। बोला, “दिन! दिन का हिसाब यह कैसा है। बताइए कितने एकड़?”

सरदार ने कहा, “यह सब गिनना-गिनाना हमसे नहीं होता। हम तो दिन के हिसाब से ज़मीन बेचते हैं। जितनी ज़मीन एक दिन में पैदल चलकर तुम नाप डालो, वही तुम्हारी। और, कीमत है दिन भर की एक हजार।”

दीना अचरज में पड़ गया। कहा, “एक दिन में तो बहुत सारी ज़मीन घेरी जा सकती है।”

सरदार हँसा। कहा, “हाँ, क्यों नहीं। बस, वह सब तुम्हारी। लेकिन एक शर्त है, अगर तुम उसी दिन उसी जगह न आ गए, जहाँ से चले थे तो कीमत ज़ब्त समझी जाएगी।”

दीना अपने बिस्तरे पर लेटा रहा, पर उसे नींद नहीं आई। रह-रहकर ज़मीन के बारे में सोचने लगता था —

“चलकर मैं कितनी ज़मीन नाप डालूँगा, कुछ ठिकाना है! एक दिन में लगभग साठ कि.मी. तो आसानी से चल ही लूँगा। दिन आजकल लंबे होते हैं और साठ कि.मी. कितनी ज़मीन उसमें आ जाएगी। उसमें से घटिया वाली तो बेच दूँगा या किराये पर उठा दूँगा लेकिन जो चुनी हुई उम्दा होगी वहाँ अपना फ़ार्म बनाऊँगा। दो दर्जन तो बैल फिलहाल काफ़ी होंगे। दो आदमी भी रखने होंगे। कोई डेढ़ सौ एकड़ में तो खेती करूँगा। बाकी बटाई के लिए।”



दीना सवेरे उठा और गाड़ी में सोते हुए अपने आदमी को जगाया। कहा कि गाड़ी तैयार करो। खुद कोल लोगों को बुलाने चल दिया।

जाकर कहा, “सवेरा हो गया। ज़मीन नापने अब चल पड़ना चाहिए।” कोल लोग सब उठे और इकट्ठे हुए। सरदार भी आ गए। चलने से पहले उन्होंने चाय की तैयारी की और दीना को चाय के लिए पूछा। लेकिन चाय में देर होने का खयाल कर उसने कहा, “अगर जाना है तो हमको चल देना चाहिए। वक्त बहुत हो गया।”

एक टेकड़ी पर पहुँचकर सरदार ने आगे तक फैले मैदान की तरफ हाथ उठाकर दीना से कहा, “देखो, जहाँ तक आँख जाती है वहाँ तक हम लोगों की ज़मीन है। इसमें जो तुम चाहो ले लो।”

दीना की आँखें चमक उठीं। धरती एकदम अछूती थी। बस हथेली की तरह दमदार और मुलायम। काली ऐसी कि बिनौला और जहाँ कहीं ज़रा निचान था वहाँ छाती-छाती भर तरह-तरह की हरियाली छाई थी। सरदार ने अपने सिर की रोयेंदार टोपी उतार कर धरती पर रख दी और कहा, “यह निशान रहा। यहाँ से चलो और यहीं आ जाओ। जितनी ज़मीन चल लोगे वह तुम्हारी होगी।”

दीना ने भी रुपये निकाले और गिनकर टोपी पर रख दिए। फिर उसने अपना कोट उतार डाला, पैट को कस लिया। अँगोछे में रोटी रखी, आस्तीनें चढ़ाई, पानी का बंदोबस्त किया, आदमी से फावड़ा लिया और वह चलने को तैयार हो गया। कुछ क्षण सोचता रहा कि किस तरफ़ को चलना बेहतर होगा। सभी तरफ़ का लालच होता था। उसने तय किया कि आगे देखा जाएगा, पहले तो सामने सूरज की तरफ़ ही चलूँ। एक बार पूरब की ओर मुँह करके खड़ा हो गया, अँगड़ाई लेकर बदन की सुस्ती हटाई। सोचने लगा मुझे वक्त नहीं खोना चाहिए, क्योंकि ठंड-ठंड में रास्ता अच्छा पार हो सकता है। सूरज की पहली किरण का उसकी ओर आना था कि दीना कंधे पर फावड़ा संभाल, खुले मैदान की ओर चल दिया। हजार-एक-मीटर चलने पर वह ठहरा। वहाँ एक गड्ढा किया और घास ऊँची चिन दी कि आसानी से दीख सके। फिर आगे बढ़ा। अब उसके बदन में फुर्ती आ गई। उसने चाल तेज कर दी। कुछ देर बाद दूसरा गड्ढा खोदा।





अब पीछे मुड़कर देखा। सूरज की धूप में टेकड़ी साफ दीखती थी। उस पर आदमी खड़े थे। अंदाजन पाँच कि.मी. तो वह आ गया होगा। धूप में ताप आता-जाता था। बास्कट उतारकर उसने कंधे पर डाल ली और फिर चल पड़ा। अब खासी गरमी होने लगी। उसने सूरज की तरफ देखा। वक्त हो गया था कि कुछ खाने-पीने को भी सोचा जाए।

“एक पहर तो बीत गया। लेकिन दिन में चार पहर होते हैं। अहाँ, अभी क्या लौटना? अभी क्या जल्दी है लेकिन जूते उतार डालूँ। यह सोच उसने जूते उतारकर धोती में खोस लिए और बढ़ चला। अब चलना आसान था।

सोचा, “अभी पाँच कि.मी. और भी चला चलूँ तब दूसरी दिशा लूँगा। कैसी उम्दा जगह है। उसे हाथ से जाने देना हिमाकत है। लेकिन क्या अजब बात है कि जितना आगे बढ़ो उतनी ज़मीन एक-से-एक बढ़कर मिलती जाती है।”

कुछ देर वह सीधा चलता रहा, फिर पीछे मुड़कर देखा तो टेकड़ी मुश्किल से दीख पड़ती थी और उस पर के आदमी रेंगती चींटी-से मालूम होते थे और वहाँ धूप में जाने क्या कुछ चिलकता हुआ-सा दीख पड़ता था।





दीना ने सोचा, “ओह, मैं इधर काफ़ी बढ़ आया हूँ। अब लौटना चाहिए।” पसीना बहता जा रहा था और प्यास भी उसे लग आई थी।

यहाँ ठहरकर उसने गड़्ढा करके ऊपर घास का ढेर चिन दिया। उसके बाद पानी पीकर सीधा बाईं ओर मुड़ गया। वह चलता गया, चलता गया। घास ऊँची थी और गरमी बढ़ रही थी। वह थकने लगा। उसने सूरज की तरफ़ देखा। सिर पर दोपहरी आ गई थी।

सोचा, अब ज़रा आराम कर लेना चाहिए। वह बैठ गया। रोटी निकाल कर खाई और कुछ पानी पिया। लेटा नहीं कि कहीं नींद न आ जाए। इस तरह कुछ देर बैठ आगे बढ़ा। पहले तो चलना आसान हुआ। खाने से उसमें दम आ गया था। लेकिन गरमी तीखी हो चली और आँखों में ऊँघ-सी आने लगी। तो भी वह चलता ही गया। सोचा कि तकलीफ़ घड़ी-दो-घड़ी की है, आराम ज़िदंगी भर का हो जाएगा।

इस तरफ़ भी उसने काफ़ी लंबी राह नापी। वह बाईं तरफ़ मुड़ने ही वाला था कि आगे की ज़मीन उपजाऊ दिखाई दी। उसने सोचा कि इस टुकड़े को छोड़ना तो मूर्खता होगी। यहाँ सनी की बाड़ी ऐसी उगेगी कि क्या कहना। यह सोच उस टुकड़े



को भी नाप डाला और पार आकर गड्ढे का निशान बना दिया। फिर दूसरी तरफ़ मुड़ा। अब जो टेकड़ी की तरफ़ देखा तो ताप के मारे हवा काँपती मालूम हुई। उस कँपकँपी के धुँधकारे में से यह टेकड़ी की जगह मुश्किल से पहचानी जाती थी।

दीना ने सोचा कि खेत की ये दो भुजाएँ मैंने ज्यादा नाप डाली हैं अब इधर कुछ कम ही रहने दें। वह तेज़ कदमों से तीसरी तरफ़ बढ़ा। उसने सूरज को देखा। सूरज ढल रहा था और दीना तीसरी दिशा में तीन कि.मी. मुश्किल से तय कर पाया था। मुकाम से अभी वह पन्द्रह कि. मी. दूर था। उसने सोचा कि छोड़ो, जाने भी दो। मेरी ज़मीन की एक बाजू छोटी रह जाएगी तो छोटी सही। लेकिन अब सीधी लकीर में मुझे वापस चलना चाहिए। जो ऐसे कहीं मैं दूर निकल गया तो बाजी गई। अरे, इतनी ही ज़मीन क्या थोड़ी है?

यह सोच दीना ने वहाँ तीसरे गड्ढे का निशान डाल दिया और टेकड़ी की तरफ़ मुड़कर ठीक उसी सीध में चल दिया।

नाक की सीध बाँधकर वह टेकड़ी की तरफ़ चला लेकिन अब चलना मुश्किल हो रहा था। धूप उसका सत ले चुकी थी। नंगे पैर जगह-जगह कट और छिल गए थे और टाँगें जवाब दे रही थीं। ज़रा आराम करने का उसका जी हुआ, लेकिन वह कैसे हो सकता था ? सूरज छिपने से पहले उसे वहाँ पहुँच जाना था और सूरज किसी की बाट देखता बैठा नहीं रहता। वह पल-पल नीचे ढल रहा था।

दीना जी-तोड़ चलने लगा। चलने में साँस फूलती और कठिनाई होती थी, पर तेज़ कदम रखता गया। लेकिन जगह अब भी दूर थी। यह देख उसने दौड़ना शुरू किया। कंधे से बास्केट फेंक दी और जूते भी, टोपी अलग की। बस हाथ में फावड़ा रहने दिया।

रह-रह कर सोचता कि अब मैं क्या करूँ? अब सूरज छिपने से पहले मैं वहाँ कैसे पहुँचूँगा ?

इस सोच और डर से वह हाँफने लगा। वह पसीना-पसीना हो रहा था, मुँह सूख रहा था फिर भी वह भागता ही जाता था। छाती उसकी धौंकनी की तरह चल रही थी। दिल भीतर हथौड़े की चोट-सा धड़कने लगा। उधर टाँगें बेबस हुई जा रही थीं। दीना को डर हुआ कि इस थकान के मारे कहीं गिरकर ढेर न हो जाए। पर रुक वह नहीं सका।



इतना भागकर भी अगर मैं अब रुकूँगा तो वे सब मुझ पर हँसेंगे और बेवकूफ़ बनाएँगे। इसलिए उसने दौड़ना न छोड़ा। दौड़ता ही गया। आगे कोलों की आवाज़ सुन पड़ती थी। वे उसको ज़ोर-ज़ोर से आवाज़ देकर बुला रहे थे। इन आवाज़ों पर उसका दिल और सुलग उठा। अब अपनी आखिरी ताकत समेट वह दौड़ा।

सूरज धरती से लगा जा रहा था। तिरछी रोशनी के कारण वह खूब बड़ा और लहू-सा लाल दीख रहा था अब डूबा, तब डूबा। सूरज बहुत नीचे पहुँच गया। लेकिन दीना भी जगह के बिलकुल किनारे आ लगा था।

टेकड़ी पर हाथ हिला-हिलाकर बढ़ावा देते हुए कोल उसे सामने दिखाई देते थे। अब तो ज़मीन पर रखी वह टोपी भी दीखने लगी। वहीं बैठा सरदार भी दिखाई दिया...वह पेट पकड़े हँस रहा था।

दीना ने हसरत भरी निगाह से सूरज की तरफ़ देखा। सूरज धरती को छू चुका था। कुछ हिस्सा डूब भी चुका था। बची-खुची शक्ति से आगे बढ़ा। टेकड़ी पर पहुँचते-पहुँचते अँधेरा हो आया था। उसके मुँह से एक चीख-सी निकल गई। ओह, मेरी सारी मेहनत व्यर्थ गई।...यह सोचकर वह थमने को हुआ, लेकिन उसे सुन पड़ा कि कोल लोग अब भी उसे पुकार रहे हैं। उसे सहसा याद आया कि वे लोग ऊँचाई पर खड़े हैं और उन्हें सूरज अब भी दीख रहा होगा। सूरज छिपा नहीं है, मुझको नहीं दीखता। यह सोचकर उसने लंबी साँस खींची और टेकड़ी पर आँखें मूँदकर दौड़ा। चोटी पर अभी धूप थी। पास पहुँचा और उसके मुँह से चीख निकल पड़ी। टाँगों ने जवाब दे दिया। वह मुँह के बल आगे को गिरा और उसके हाथ टोपी तक जा पहुँचे।

“खूब! खूब!” सरदार ने कहा, “देखो, उसने कितनी ज़मीन ले डाली।”

दीना का नौकर दौड़ा आया। उसने मालिक को उठाना चाहा। लेकिन देखा, मालिक के मुँह से खून निकल रहा है।

दीना मर चुका था। कोल लोग दया और व्यंग्य से हँसने लगे।

नौकर ने फावड़ा लिया और दीना के लिए कब्र खोदी और उसमें लिटा दिया। सिर से पाँव तक कुल दो मीटर ज़मीन उसके लिए काफ़ी थी।





अदल-बदल

– पन्नालाल पटेल

होली की सुहावनी शाम थी। बच्चे मोहल्ले के बीच में लगे नीम के पेड़ के नीचे इकट्ठे हुए थे। वे एक-दूसरे पर धूल उड़ा रहे थे और खेल रहे थे।

इतने में वहाँ अमरत और इसब आ पहुँचे। वे एक-दूसरे के कंधे पर हाथ रखे थे। दोनों ही नयी कमीज़ और निकर पहने थे, एक ही आकार के, एक ही नाप के और उसी दिन सिलाए हुए। वे दोनों एक ही स्कूल में जाते और एक ही कक्षा में पढ़ते थे। दोनों के घर भी आमने-सामने थे।

अमरत और इसब के माँ-बाप का व्यवसाय भी एक ही था, खेती का। स्थिति भी समान थी। सेठ पाँच बार मना करने पर एक बार कर्जा देता था।

संक्षेप में, इन दोनों दोस्तों के बीच यदि कोई अंतर था तो वह इतना ही कि अमरत की माँ थी, पिताजी थे और तीन भाई थे। लेकिन इसब की माँ नहीं थी, भाई भी नहीं थे, केवल पिताजी थे।

इन दोनों दोस्तों को एक ही प्रकार के कपड़ों में देखकर चबूतरे पर बैठे हुए दो-तीन लड़के बोल उठे, “अरे ओ, अमरत-इसब, कहीं ‘अदल-बदल न हो’ जाना।”

दूसरे लड़के को शरारत सूझी, “भाई लड़कर तो दिखाओ। उसमें भी दोनों बराबर हो या कम-ज्यादा?”

वहाँ पर खड़े दूसरे लड़के भी बोल उठे, “हाँ, हाँ अमरत, ठीक तो है इसब! देखें तो सही कौन जीतता है।”

पहला लड़का बोला, “यह लड़ाई कोई गुस्से में तो हो नहीं रही। वैसे ही लड़ना है।”

इसब ने अमरत की ओर देखा।

अमरत बोला, “ना भाई ना, मेरी माँ मुझे मार डालेगी।”

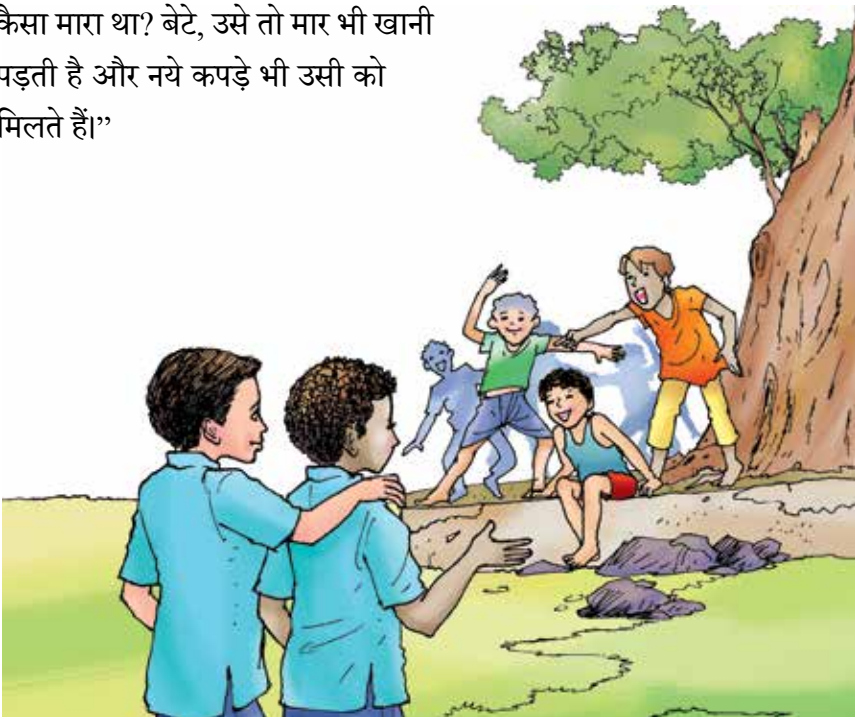
अमरत का भय ठीक ही था। घर से निकलते समय माँ ने चेतावनी दी थी, “देखो, ज़िद करके नये कपड़े बनवाए हैं, अब कहीं फाड़े या गंदे किए तो फिर देख लेना।”

बात सही थी। इसब ने कमीज़ और निकर सिलवाने के लिए दिए थे, यह सुनकर अमरत ने भी ज़िद की थी, “इसब जैसे कपड़े सिलवाओ तभी स्कूल जाऊँगा।”

माँ ने कहा था, “बेटा, इसब लता-पत्तों को बाँधता था इसलिए उसके कपड़े फट गए थे। तेरे तो अब भी ठीक हैं।”

“कहाँ ठीक हैं? यह देखो!” कहकर अमरत ने कमीज़ के एक छेद में उँगली डालकर उसे और भी फाड़ डाला था।

तब माँ ने एक बात और कही, “इसब को उसके बाप ने कल ऊपर लटका कर कैसा मारा था? बेटे, उसे तो मार भी खानी पड़ती है और नये कपड़े भी उसी को मिलते हैं।”



लेकिन अमरत ऐसी बातों में असल बात को भूलने वाला नहीं था, “तो फिर मुझे भी बाँध कर मारो। लेकिन मेरे लिए भी इसब जैसे कपड़े तो सिलवाने ही होंगे।”

“तो कहो अपने पिताजी से।” माँ ने जैसे अपने सिर से ज़िम्मेदारी उठाकर बाप पर डाल दी।

लेकिन माँ नहीं मानेगी तो पिताजी कैसे मानेंगे? अमरत ने भी ज़िद नहीं छोड़ी। स्कूल नहीं गया, खाना नहीं खाया, रात को घर पर सोया तक नहीं।

फिर माँ ने अपने पति को समझाकर नये कपड़े सिलवाने की अनुमति ले ली। अमरत को इसब की गोशाला में से ढूँढ़कर घर ले आई।

इन सबके बाद इसब की तरह सज-धज कर गाँव से निकला हुआ अमरत ऐसा काम कैसे कर सकता था जिससे उसके कपड़ों को कोई नुकसान हो? और फिर वह लड़ाई भी इसब के साथ!

पर इतने में उस टोली से एक शरारती लड़का आगे निकलकर सीधा अमरत के पास गया। आते ही उसने अमरत के गले में हाथ डालकर कहा, “तो फिर चल, हम दोनों लड़ते हैं।” और उसे खुली जगह में खींच ले गया।

लेकिन अमरत लड़ना चाहता हो तभी उसको मारेगा ना? वह तो उससे छूटने की कोशिश करने लगा, “छोड़ दो मुझे, छोड़ दो। मुझे नहीं लड़ना। देख ले कालिया, मना कर रहा हूँ...।”



इतने में तो कालिया ने उसे ज़मीन पर पटक दिया।

यह देखकर टोली के लड़के खुश हो गए और चिल्लाने लगे, “वाह-वाह, अमरत हार गया। कालिया बहादुर है। जीत गया.... जीत गया...।”

यह देखते ही इसब को गुस्सा आ गया। वह कालिया को ललकार कर बोला, “आ जा, मेरे सामने आ जा।”

कालिया झिझक गया। पर दूसरे लड़के उसका जोश बढ़ाने लगे। फिर तो दोनों की कुश्ती शुरू। दोनों ऐसे लड़े कि नीचे गिरा हुआ कालिया फूट-फूटकर रोने लगा।

दूसरे लड़कों ने देखा कि हँसी-मज़ाक का खेल उलटा ही हो गया। उन्होंने अमरत का बदला लेने के लिए गए हुए इसब के हाथ से कालिया को छुड़वाया और फिर उसे रोता हुआ छोड़कर सारे लड़के इधर-उधर खिसक गए। उनको डर था कालिया के माँ-बाप से डाँट पिट जाने का।

अमरत इसब को लेकर भाग निकला। आगे चलकर इसब की फटी हुई कमीज़ की ओर उसका ध्यान गया। जेब के साथ डेढ़ बालिशत लंबा टुकड़ा लटक रहा था।

उसे देखते ही दोनों वहाँ के वहाँ ठिठक गए। आधी जीभ बाहर को निकल पड़ी। चारों भयभीत आँखें उस टुकड़े पर जा चिपकीं, “अब?”

उस रोते हुए लड़के की आवाज़ सुनकर या और किसी कारण से इसब के बाप ने घर से आवाज़ लगाई, “अरे, ओ इसबा, कहाँ गया रे?”

दोनों लड़कों की धड़कने मानों बोल रही थीं कि अब मारे गए। दोनों को निश्चित रूप से मालूम था कि कमीज़ का फटा टुकड़ा देखकर इसब का बाप उसकी चमड़ी के भी टुकड़े-टुकड़े कर देगा।

और नहीं तो क्या! कितनी मिन्नतें करने के बाद सेठ ने यह कपड़ा उधार दिया था।

फिर से आवाज़ सुनाई दी, “अरे कौन रोता है? इसब कहाँ गया?”

दोनों लड़कों को शक हो गया कि शायद वह उसी ओर आ जाएँगे।



अचानक अमरत के दिमाग में बिजली कड़की। वह इसब को एक तरफ़ ले गया, “अरे आ तो सही!”

फिर दो घरों के बीच की सँकरी गली में जाकर अमरत अपनी कमीज़ निकालते हुए कहने लगा, “निकाल ... जल्दी निकाल ... और यह ले, मेरी पहन ले।”

इसब तो भौचक्का रह गया। बोला, “और तुम?”

“मैं तेरी पहन लूँगा। अदल-बदल कर लेते हैं। जल्दी कर, कोई देख लेगा।”

इसब बटन खोलने लगा लेकिन उलझन में भी पड़ गया। उसने पूछा, “अदल-बदल? लेकिन तेरे पिताजी तुझे मारे बिना नहीं छोड़ेंगे।”

अमरत इसब की कमीज़ निकालने में मदद करने लगा और बोला, “लेकिन मेरी तो माँ है न!”

बात सही थी। इसब ने कई बार देखा था, पिताजी की मार से बचने के लिए अमरत अपनी माँ के पीछे छुप जाता था। हाँ, माँ से भी एक दो चपत मिल जाती थी, लेकिन वह तो इसब को गुड़ जैसी मीठी लगती थी।



फिर भी इसब इस अदल-बदल के लिए राजी न होता, लेकिन उसी समय बाहर कुछ आवाज़ हुई तो इसब ने झट से अपनी कमीज़ निकाल दी और दोनों ने एक-दूसरे की पहन ली। फिर दोनों गली में से बाहर निकले और डरते, सकुचाते अपने-अपने घर की ओर चलने लगे। अमरत का दिल तो डर के मारे ज़ोर-ज़ोर से धड़कने लगा।

पर वह तो त्योहार का दिन था और वह भी होली की चहल-पहल वाला त्योहार। इसलिए अमरत की माँ ने अमरत के अपराध को थोड़ा-सा गुस्सा दिखाकर माफ़ कर दिया। सूई-धागा लेकर कमीज़ के फटे हुए हिस्से को भी सी दिया। इसके साथ ही दोनों बच्चों का वह डर और संकोच दूर हो गया।

दोनों दोस्त फिर से एक-दूसरे के कंधों पर हाथ रखकर होली जलाने के लिए गाँव से बाहर निकल गए। दोनों के दिलों में अपूर्व आनंद था।

लेकिन इतने में किसी रहस्य जानने वाले लड़के ने उनके आनंद को उड़ा दिया। आँख मिचकाते हुए वह बोला, “क्यों? अदल-बदल?”

अमरत और इसब समझ गए कि यह लड़का ज़रूर देख गया है। दोनों वहाँ से खिसक गए।

अब तो सभी लड़के जान गए कि 'अदल-बदल' बोलने से ये चिढ़ते हैं तो वे जहाँ भी जाते थे वहाँ लड़के उन्हें चिढ़ाते थे, “क्यों? रे, अदल-बदल?”

सारा भंडा फूट जाने के डर से दोनों होली के स्थान से घर लौट आए।

बेचारे जाँँ भी कहाँ? बच्चे उनके पीछे दौड़-दौड़ कर उन्हें छेड़ते रहे—अदल-बदल! अदल-बदल!

आँगन में चारपाई बिछाकर इसब के पिताजी हुक्का पी रहे थे। उन्होंने दोनों बच्चों को अपने पास बुलाया और पूछा, “थूँ अलग-अलग क्यों घूम रहे हो? आओ, यहाँ बैठो।”

इसब के पिताजी की इतनी मीठी आवाज़ सुनकर दोनों काँप उठे। दोनों को लगा कि पिताजी को सही बात मालूम हो गई है, इसलिए इतने स्नेह का दिखावा कर रहे हैं।

इतने में पठान बाप खड़ा हो गया और उठते ही उसने दस साल के अमरत को उठा लिया। फिर आवाज़ दी, “अरी वहाली भाभी, आज से तुम्हारा अमरत मेरा है।”



भाभी हँसते हुए आई और बोलीं, “हसन भैया, एक बेटा तो तुमसे सँभलता नहीं।”

“लेकिन आज से इक्कीस भी हों न, तो सँभाल लूँगा।” पठान का गला भर आया।

बहाली को आश्चर्य हुआ।

गला साफ करके, पठान ने दोनों बच्चों को उसी गली में जाते हुए देखा था, यह बात बहाली को बताई और बोला, “मैंने सोचा, जाकर देखूँ तो बात क्या है?”

पठान को किस्सा सुनाते हुए देखकर मोहल्ले की और महिलाएँ भी इकट्ठी हो गईं। लेकिन बात कोई लंबी नहीं थी। उसने कमीज़ निकालकर उसकी अदल-बदल की बात कही और बोला, “इसब ने पूछा कि तेरे पिताजी मारेंगे तो? लेकिन तुम्हारा अमरत क्या बोला जानती हो? बोला कि मेरी तो माँ है न।”

पठान की फिर से आँखें भर आईं। उसने कहा, “सच कहता हूँ इसकी इतनी-सी बात ने मेरा दिल साफ़ कर डाला, मेरा दिमाग ठिकाने पर ला दिया।” उसने इसब को प्यार से गले लगा लिया और उसकी पीठ दुलारते हुए बोला, “अब तुम्हें कभी अपनी अम्मी का अभाव महसूस नहीं होगा।”

मोहल्ले की महिलाएँ भी इन बच्चों का परस्पर प्रेम देखकर दंग रह गईं।

इतने में होली जलाकर लौटते हुए बच्चों ने अमरत-इसब को देखा और छेड़ना शुरू कर दिया, “अमरत-इसब, अदल-बदल भाई अदल-बदल।”

लेकिन अब तो डरने की बात ही नहीं थी। अमरत और इसब उलटे खुश हुए।

अदल-बदल की बात सारे गाँव में फैल गई। होली जल रही थी, वहाँ भी वही बात। स्वयं मुखिया ने ऐसे घोषणा की मानों नये नाम का खिताब दे रहा हो, “आज से अमरत का नाम अदल और इसब का नाम बदल रखा जाए।”

और इसके साथ ही गाँव के सारे बच्चे खुश हो गए। केवल गाँव ही नहीं गगन भी गूँज उठा, “अमरत-इसब, अदल-बदल। अदल-बदल भाई अदल-बदल।”





शांति

– विष्णु सखाराम खांडेकर

सूरज काले बादलों से धीरे-धीरे निकलने लगा था। जंगल में से गुज़रनेवाली नदी में खड़े अर्धदान में लीन एक संन्यासी मन-ही-मन सोच रहा था— “हे ईश्वर! तुम प्रकाशमान हो! तुम ही धरती पर होने वाले अंधकार के संहारक हो! धरती का अँधेरा तो तुम नष्ट करते हो, परंतु इस धरती पर होने वाले लोगों के मन के अँधेरे को तुम कब दूर करोगे? उसे घट-घट में रमे राम के दर्शन कब होंगे? हे दयानिधान! मुझे विश्वास है कि दुनिया को घेरे अशांति के दावानल को सिर्फ़ तुम्हीं शांत कर पाओगे। शांति के विधान के लिए मैं अपना तप, सुख, स्वर्ग सब न्योछावर करने के लिए तैयार हूँ। कुछ भी करो, पर इस दुनिया में अमन, शांति का साम्राज्य फैला दो। मैं ऐसी सुंदर दुनिया देखना चाहता हूँ, जहाँ सिंह की पीठ पर खरगोश खेलता हो, उकाब की गोद में साँप सोया हो और सभी जन एक हों।”

उसी समय एक चील अपने घोंसले से झाँककर सूरज को देख रही थी। सूरज के दर्शन से उसे बेहद प्रसन्नता हुई। शायद उसे मुर्गी के छोटे, पिलपिले चूज़ों का स्मरण हो आया था।





उसका चकुला पीछे से आकर उसकी गोद में दुबकने का प्रयास करने लगा। उसे चूमकर चील बोली, “देखो बेटे, अब आखेट का समय हुआ। मैं पलभर में लौट आऊँगी। कल तुम अपने घोंसले से निकलने की कोशिश कर रहे थे। प्यारे, शायद तुम नहीं जानते हो कि तुम्हारे पंख अब भी कमजोर हैं। तुम सामने वाला वह जो नीला आकाश देखते हो न, वहाँ एक मायावी हमेशा दाँव लगाकर बैठी रहती है। वह तुम्हारे जैसे मासूम चकुलों को इशारा करके अपनी ओर बुलाती है और फिर ठगकर उन्हें अपने घोंसले में भगा ले जाती है। गीत गाकर वह तुम्हें बहकाएगी। बादलों में छिपे सुंदर हाथी, घोड़ों का वह तुम्हें प्रलोभन दिखाएगी। पर देखो बेटे, एक बात याद रखना, चकुलों को ठगकर उनका पिलपिला मांस खानेवाली दुष्ट मायावी है यह! उसकी चपेट में मत आना। मेरी कसम, तुम अपने घोंसले से मत निकलना! मैं आज तुम्हारे लिए सुंदर-सा सँपोला लाऊँगी। समझे! मेरी बातों का खयाल रखना, भूलना नहीं।”

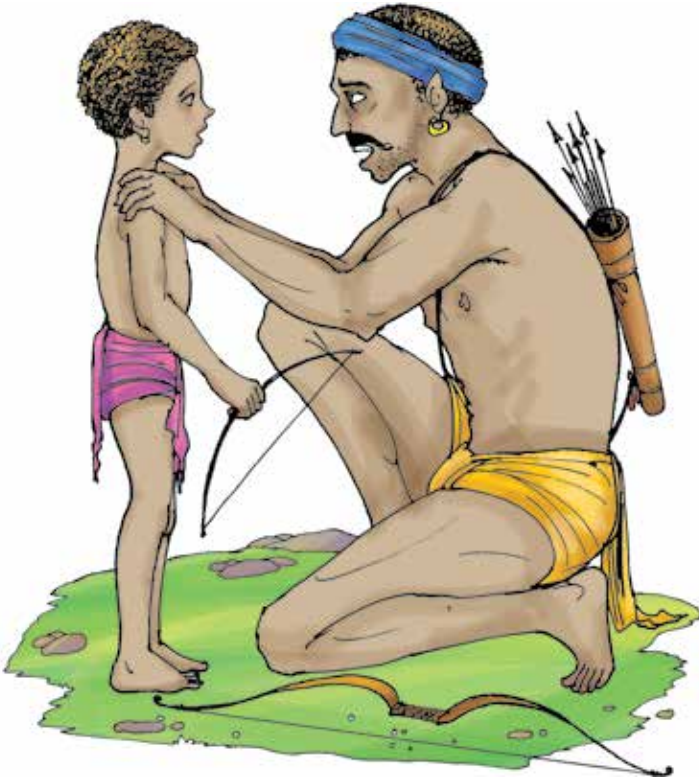
“सँपोले का गोشت बहुत मीठा होता है। मात्र बखान से थोड़ी समझ में आएगा। बेहतर है कि उसे एक बार चखा जाए....”

“उस सँपोले की माँ नहीं होती?” चकुले ने पूछा।

चील मौन रह गई।

“यदि तुम उसे पकड़ोगी तो क्या उसकी माँ नहीं रोएगी?”





“तुम कितने मासूम हो मेरे बच्चे! अरे पागल, साँप की और हमारी प्रजाति अलग-अलग है। उनका और हमारा खून भी अलग है बेटे! उसके साथ हमारी दुश्मनी तो सदियों पुरानी है।”

“दुश्मनी से मतलब?”

“साँप चील का बैरी होता है।”

“बैरी माने?”

“बैरी को मारा जाता है।”

“क्यों?”

“पेट के लिए।”

“फिर हम कुछ और खा लें तो....।”



“पागल कहीं के! तुम्हें तो जंगल के संन्यासी की संतान होना चाहिए था। लगता है, तुम गलती से मेरी कोख में आ गए हो।” अपने चकुले को फिर प्यार से चूमकर चील ने आकाश में छलाँग लगाई। फिर अचानक वह धरती की ओर चली। मानो आकाश से धरती की ओर आनेवाला कोई वायुयान हो।

उसी समय एक शिकारी धनुष-बाण लेकर अपनी झोंपड़ी से निकल रहा था। अपने इकलौते, प्यारे बेटे को चूमकर बोला, “कल तुम अपने घर से निकलकर जंगल में रंग-बिरंगे फूलों को बटोरते दूर तक भटक रहे थे न? आज वैसी हरकत मत करना। जंगल के इन झाड़-झंखाड़ों में जहरीले साँप होते हैं। उनके काटने का डर हमेशा बना होता है। अपना खयाल रखना।”

“पर बाबा....”

“पर-वर कुछ नहीं। कल तूने चकुले के लिए ज़िद की थी न? आज मैं उसे जरूर ला दूँगा। पहले शिकार तेरे लिए, फिर अपने लिए मंजूर?”

“क्या उसके माँ नहीं होती?” बेटे ने पूछा।

“पागल, बिना माँ के चकुला थोड़े होगा?”

“फिर मेरे लिए वह चकुला मत लाओ। यदि तुम उसे पकड़ोगे तो उसकी माँ रोएगी। कल जब मैं रास्ता भूल गया था तो रो-रोकर माँ की आँखें सूज आई थीं।”

प्यार से थपथपाकर शिकारी ने उसे समझाया, “तुम्हें तो जंगल के संन्यासी की संतान होना चाहिए था। गलती से तुमने यहाँ जन्म लिया। अरे पागल, मनुष्य और पंछी की प्रजाति एक थोड़े है? जाओ, तीर से खेलो। भागो!”

अपने बेटे के कंधों को प्यार से थपथपाकर शिकारी शिकार के लिए निकल पड़ा। वह तीर-कमान सँभालता हुआ तेज़ी से बढ़ने लगा। मानो कोई मुस्तैद सैनिक अपनी मातृभूमि की रक्षा की धुन में निकल पड़ा हो! उसी समय सँपोले ने अपनी माँ से कहा, “देखो माँ, धूप तेज़ हो चुकी है। चलो, हम अपने घर चलें।”

माँ गुस्से में थी। बोली, “नहीं। और थोड़ी देर रुक जाओ। शिकारी के आने का समय हो चुका है। उसको काटे बगैर मुझे चैन नहीं आएगा।”



“उसने कल तुम्हें गलती से कुचला होगा। इतनी-सी बात पर तुनक जाना ठीक नहीं। मैं तो तुम्हारे शरीर पर कितनी बार कूदता-फाँदता रहता हूँ।”

“तुम निपट पागल हो बेटे! तुम्हें तो जंगल के संन्यासी की संतान होना चाहिए था। गलती से तुम मेरी गोद में आए।”

“यदि तुम उसे काटोगी तो उसका बेटा नहीं रोएगा?” सँपोले ने माँ से प्रश्न किया।

“भले रोए! उससे मेरा क्या बिगड़ेगा? मनुष्य की और हमारी प्रजाति एक थोड़े ही है!”

इतने में सामनेवाली झाड़ी से पत्तों की चरमराहट सुनाई दी। आहत पाते ही साँपिन ने सँपोले से कहा, “मैं अभी पलक मारते आ जाऊँगी। तू अपना खयाल रखना। सतर्क रहना। झाड़-झंखाड़ों की छाया को छोड़कर बाहर मत जाना। समझे?”

पत्तों की चरमर जारी थी। अपने बच्चे को प्यार से सहलाती हुई साँपिन आवाज़ की दिशा में रेंगती हुई चल पड़ी, मानो टेढ़े-मेढ़े रास्ते से समुंदर की ओर बढ़नेवाली नदी हो!



शिकारी, चील के घोंसले की खोज में मग्न था। चोरी-छिपे साँपिन शिकारी का पीछा कर रही थी। उसने आकाश की ओर ताका। एक चील अपनी पैनी नज़रों से धरती की ओर कुछ तलाशती हुई आकाश में तैर रही थी। साँपिन रोमांचित हो उठी। उसके समूचे शरीर पर रोंगटे खड़े हो गए। उसने तुरंत पास की घनी झाड़ी में शरण ली।

थोड़ी देर बाद जब उसने झाड़ी से बाहर झाँककर देखा, तब उसे मालूम हुआ कि चील आसमान को चूमने की ललक लिए ऊपर की ओर बढ़ रही थी। उसने इर्द-गिर्द नज़र दौड़ाई। शिकारी का कहीं नामोनिशान नहीं था। शिकारी का लड़का भी अपने बाप का अनुगामी बन गया था। आकाश के आकर्षण से चील के चकुले ने भी कब की छलाँग लगा दी थी। “माँ-बाप के उपदेशों के बावजूद स्वच्छंद विचरना जीवन-क्रम की एक अभिन्न परंपरा ही रही है।”

शिकारी आसमान की ओर नज़र गड़ाकर खड़ा था। अचानक उसे चील का चकुला नज़र आया। धनुष से तीर छूटा। उसी वक्त साँपिन ने उसे काटा।

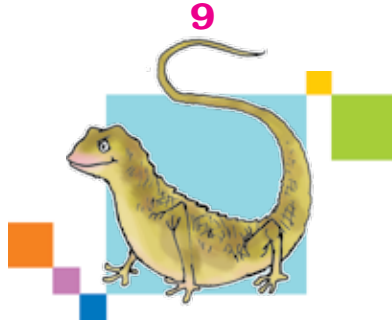
दूसरे ही क्षण सँपोले पर चील टूट पड़ी।

शांति का परम उपासक संन्यासी अर्घदान से निवृत्त होकर अपनी पर्णकुटी की ओर लौट रहा था कि दूर से उस दृश्य को देखकर पलभर उसे अपनी साधना-सिद्धि पर प्रसन्नता हो आई। पलभर सारे सजीवों में बंधुता निर्माण करने की अपनी माँग पूरी होने का उसे भ्रम हुआ। चील, साँप और आदमी एक-दूसरे की बगल में सोए थे। साँप को न चील का डर, न आदमी को साँप का। कितना सुंदर, मंगल दृश्य था वह! “मेरी तपस्या की ही विजय है यह!” आँखें मूँदकर हाथ जोड़ते हुए ईश्वर को संबोधित करते हुए वह बोला—“हे ईश्वर, तुम्हारी लीला अगाध है! धन्य हो तेरी...”

वह आगे बढ़ा और सहसा चौंक उठा। उसके रोंगटे खड़े हो गए। जैसे ही उसने तीनों का शव देखा वह सकपका गया। उसने देखा—एक आदमी, एक चील का चकुला और एक साँप का बच्चा।

उसके हाथ से कमंडल छूट गया। अब आकाश की ओर देखने का उसमें साहस तक नहीं रहा। शर्मिदा होकर उसने अपनी आँखें धरती में गड़ाई। उसकी आँखें धीरे-धीरे बरसने लगीं।





गिरगिट का सपना

– मोहन राकेश

एक गिरगिट था। अच्छा, मोटा-ताजा। काफ़ी हरे जंगल में रहता था। रहने के लिए एक घने पेड़ के नीचे अच्छी-सी जगह बना रखी थी उसने। खाने-पीने की कोई तकलीफ़ नहीं थी। आसपास जीव-जंतु बहुत मिल जाते थे। फिर भी वह उदास रहता था। उसका खयाल था कि उसे कुछ और होना चाहिए था। और हर चीज़, हर जीव का अपना एक रंग था। पर उसका अपना कोई एक रंग ही नहीं। थोड़ी देर पहले नीले थे, अब हरे हो गए। हरे से बैंगनी। बैंगनी से कत्थई। कत्थई से स्याह। यह भी कोई ज़िंदगी थी! यह ठीक था कि इससे बचाव बहुत होता था। हर देखनेवाले को धोखा दिया जा सकता था। खतरे के वक्त जान बचाई जा सकती थी। शिकार की सुविधा भी इसी से थी। पर यह भी क्या कि अपनी कोई एक पहचान ही नहीं! सुबह उठे, तो कच्चे भुट्टे की तरह पीले और रात को सोए तो भुने शकरकंद की तरह काले! हर दो घंटे में खुद अपने ही लिए अजनबी!



उसे अपने सिवा हर एक से ईर्ष्या होती थी। पास के बिल में एक साँप था। ऐसा बढ़िया लहरिया था उसकी खाल पर कि देखकर मज़ा आ जाता था! आसपास के सब चूहे-चमगादड़ उससे खौफ़ खाते थे। वह खुद भी उसे देखते ही दुम दबाकर भागता था। या मिट्टी के रंग में मिट्टी होकर पड़े रहता था। उसका ज्यादातर मन यही करता था कि वह गिरगिट न होकर साँप होता, तो कितना अच्छा था! जब मन आया, पेट के बल रेंग लिए। जब मन आया, कुण्डली मारी और फन उठाकर सीधे हो गए।

एक रात जब वह सोया, तो उसे ठीक से नींद नहीं आई। दो-चार कीड़े ज्यादा निगल लेने से बदहजमी हो गई थी। नींद लाने के लिए वह कई तरह से सीधा-उलटा हुआ, पर नींद नहीं आई। आँखों को धोखा देने के लिए उसने रंग भी कई बदल लिए, पर कोई फ़ायदा नहीं हुआ। हलकी-सी ऊँघ आती, पर फिर वही बेचैनी। आखिर वह पास की झाड़ी में जाकर नींद लाने की एक पत्ती निगल आया। उस पत्ती की सिफ़ारिश उसके एक और गिरगिट दोस्त ने की थी। पत्ती खाने की देर थी कि उसका सिर भारी होने लगा। लगने लगा कि उसका शरीर ज़मीन के अंदर धँसता जा रहा है। थोड़ी ही देर में उसे महसूस हुआ जैसे किसी ने उसे ज़िंदा ज़मीन में गाड़ दिया हो। वह बहुत घबराया। यह उसने क्या किया कि दूसरे गिरगिट के कहने में आकर ख्वाहमख्वाह वह पत्ती खा ली। अब अगर वह ज़िंदगी-भर ज़मीन के अंदर ही दफ़न रहा तो?

वह अपने को झटककर बाहर निकलने के लिए जोर लगाने लगा। पहले तो उसे कामयाबी हासिल नहीं हुई। पर फिर लगा कि ऊपर की ज़मीन पोली हो गई है



और वह बाहर निकल आया है। ज्यों ही उसका सिर बाहर निकला और बाहर की हवा अंदर गई, उसने एक और ही अजूबा देखा। उसका सिर गिरगिट के सिर जैसा न होकर साँप के सिर जैसा था। वह पूरा ज़मीन से बाहर आ गया, पर साँप की तरह बल खाकर चलता हुआ। अपने शरीर पर नज़र डाली, तो वही लहरिया नज़र आया जो उस पास वाले साँप के बदन पर था। उसने कुंडली मारने की कोशिश की तो कुंडली लग गई। फन उठाना चाहा तो फन उठ गया। वह हैरान भी हुआ, खुश भी। उसकी कामना पूरी हो गई थी। वह साँप बन गया था।

साँप बने हुए उसने आसपास के माहौल को देखा। सब चूहे-चमगादड़ उससे खौफ़ खाये हुए थे। यहाँ तक कि सामने के पेड़ का गिरगिट भी डर के मारे जल्दी-जल्दी रंग बदल रहा था। वह रेंगता हुआ उस इलाके से दूसरे इलाके की तरफ़ बढ़ गया। नीचे से जो पत्थर-काँटे चुभे, उनकी उसने परवाह नहीं की। नया-नया साँप बना था, सो इन सब चीज़ों को नज़र-अंदाज़ किया जा सकता था। पर थोड़ी दूर जाते-जाते सामने से एक नेवला उसे दबोचने के लिए लपका, तो उसने सतर्क होकर फन उठा लिया।

उस नेवले की शायद पड़ोस के साँप से पुरानी लड़ाई थी। साँप बने गिरगिट का मन हुआ कि वह जल्दी से रंग बदल ले, पर अब रंग कैसे बदल सकता था? अपनी लहरिया खाल की सारी खूबसूरती उस वक्त उसे एक शिकंजे की तरह लगी। नेवला फुदकता हुआ बहुत पास आ गया था। उसकी आँखें एक चुनौती के साथ चमक रही थीं। गिरगिट



62/ कहो कहानी

आखिर था तो गिरगिट ही। वह सामना करने की जगह एक पेड़ के पीछे जा छिपा। उसकी आँखों में नेवले का रंग और आकार बसा था। कितना अच्छा होता अगर वह साँप न बनकर नेवला बन गया होता।

तभी उसका सिर भारी होने लगा। नींद की पत्ती अपना रंग दिखा रही थी। थोड़ी देर में उसने पाया कि जिस्म में हवा भर जाने से वह काफ़ी फूल गया है। ऊपर तो गरदन निकल आई है और पीछे को झबैरैली पूँछ। जब वह अपने को झटककर आगे बढ़ा, तो लहरिया साँप एक नेवले में बदल चुका था।

उसने आसपास नज़र दौड़ाना शुरू किया कि अब कोई साँप नज़र आए, तो उसे वह लपक ले। पर साँप वहाँ कोई था ही नहीं। कोई साँप निकलकर आए, इसके लिए उसने ऐसे ही उछलना-कूदना शुरू किया। कभी झाड़ियों में जाता, कभी बाहर



आता। कभी भीतर से ज़मीन को खोदने की कोशिश करता। एक बार जो वह ज़ोर-से उछला तो पेड़ की टहनी पर टँग गया। टहनी का काँटा जिस्म में ऐसे गड़ गया कि न अब उछलते बने, न नीचे आते। आखिर जब बहुत परेशान हो गया, तो वह मनाने लगा कि क्यों उसने नेवला बनना चाहा। इससे अच्छा था कि पेड़ की टहनी बन गया होता। तब न रेंगने की ज़रूरत पड़ती, न उछलने-कूदने की। बस अपनी जगह उगे हैं और आराम से हवा में हिल रहे हैं।

नींद का एक और झोंका आया और उसने पाया कि सचमुच अब वह नेवला नहीं रहा, पेड़ की टहनी बन गया है। उसका मन मस्ती से भर गया। नीचे की ज़मीन





से अब उसे कोई वास्ता नहीं था। वह ज़िंदगी भर ऊपर झूलता रह सकता था। उसे यह भी लगा जैसे उसके अंदर कुछ पत्तियाँ फूटने वाली हों। उसने सोचा कि अगर उसमें फूल भी निकलेगा, तो उसका क्या रंग होगा? और क्या वह अपनी मरजी से फूल का रंग बदल सकेगा?

पर तभी दो-तीन कौवे उस पर आ बैठे। एक ने उस पर बीट कर दी, दूसरे ने उसे चोंच से कुरेदना शुरू किया। उसे बहुत तकलीफ़ हुई। उसे फिर अपनी गलती के लिए पश्चाताप हुआ। अगर वह टहनी की जगह कौवा बना होता, तो कितना अच्छा था! जब चाहो, जिस टहनी पर जा बैठो, और जब चाहो, हवा में उड़ान भरने लगे!

अभी वह सोच ही रहा था कि कौवे उड़ खड़े हुए। पर उसने हैरान होकर देखा कि कौवों के साथ वह भी उसी तरह उड़ खड़ा हुआ है। अब ज़मीन के साथ-साथ आसमान भी उसके नीचे था। और वह ऊपर-ऊपर उड़ा जा रहा था। उसके पंख बहुत



चमकीले थे। जब चाहो उन्हें झपकाने लगो, जब चाहे सीधे कर लो। उसने आसमान में कई चक्कर लगाए और खूब काँय-काँय की। पर तभी नज़र पड़ी, नीचे खड़े कुछ लड़कों पर जो गुलेल हाथ में लिए उसे निशाना बना रहे थे। पास उड़ता हुआ एक कौवा निशाना बनकर नीचे गिर चुका था। उसने डरकर आँखें मूँद लीं। मन ही मन सोचा कि कितना अच्छा होता अगर वह कौवा न बनकर गिरगिट ही बना रहता।

पर जब काफ़ी देर बाद भी गुलेल का पत्थर उसे नहीं लगा, तो उसने आँखें खोल लीं। वह अपनी उसी जगह पर था जहाँ सोया था। पंख-पंख अब गायब हो गए थे और वह वही गिरगिट का गिरगिट था। वही चूहे-चमगादड़ आसपास मंडरा रहे थे और साँप अपने बिल से बाहर आ रहा था। उसने जल्दी से रंग बदला और दौड़कर उस गिरगिट की तलाश में हो लिया जिसने उसे नींद की पत्ती खाने की सलाह दी थी। मन में शुक्र भी मनाया कि अच्छा है वह गिरगिट की जगह और कुछ नहीं हुआ, वरना कैसे उस गलत सलाह देने वाले गिरगिट को गिरगिटी भाषा में मज़ा चखा पाता।





दायाँ-बायाँ

– गुलज़ार

राजा के दो हाथ थे। एक का नाम था 'दायाँ' और दूसरे का 'बायाँ'। राजा को जब कोई काम न होता, तो ये दोनों बैठे-ठाले आपस में उँगलियाँ लड़ाया करते थे। एक-दूसरे की पीठ खुजाते। हथेलियाँ मलते। कभी एक-दूसरे के नाखून काटते।

दोनों को एक बुरी आदत थी। राजा जब कोई बात करता तो वे उसकी बातों की नकल करने लगते। राजा कहता चाँद गोल है तो दायाँ एक उँगली खोलकर दायरा बना देता। कभी-कभी इसमें बायाँ भी शामिल हो जाता और दोनों मिलकर एक गोल फुटबॉल की शकल बना देते। बायाँ ज़रा कम बोलता था, लेकिन दायाँ तो ढीठ था। उससे रहा ही नहीं जाता था। राजा की हर बात पे हरकत में आ जाता था। राजा छींकने लगता तो दायाँ ख्वामख्वाह नाक मसल-मसल के उसे रोकने की कोशिश करता। पर छींक तो आनी ही थी।

राजा जब खाना खाने बैठता तो वही निवाले तोड़-तोड़ के मुँह में डालता था। उसे हिचकी आती तो फ़ौरन पानी का गिलास उठाकर उसके मुँह पे लगा देता।



सेवा में इतने चुस्त दोनों कि राजा कभी सूरज की तरफ़ देखता तो उसके कहने से पहले दाय़ाँ लपक के आँख पे साया कर देता।

कभी-कभी जल्दी भी कर बैठते थे। दाएँ ने जल्दी की सेवा में राजा को मालूम था कि दूध का गिलास गरम है। लेकिन दाएँ ने होशियारी की, और अपनी दो उँगलियाँ जला लीं। दूध राजा के कपड़ों पर गिरा दिया। राजा ने ज़्यादा कुछ नहीं कहा, “आ तेरी...कम्बख़्त!” बस इतना कह के चुप हो गए। बाएँ ने बढ़ के राजा के कपड़े झाड़ दिए, बस! राजा ने भी हमदर्दी जताई और डॉक्टर को बुला के मरहम लगवा दी।

दोनों सेवादार भी थे। वफ़ादार भी थे।

राजा की लड़ाई
हो जाती किसी
दुश्मन से, तो
दाय़ाँ फ़ौरन तलवार
खींच लेता और बायाँ
ढाल सँभाल लेता।
राजा घोड़े पर सवार होता
तो दाय़ाँ चाबुक सँभाल
लेता और बायाँ घोड़े की लगाम
खींच के रखता था।



कभी राजा अपने ही खयालों में गुम होता तो वो मुँह लगे बारी-बारी उठते और राजा की मूँछें मरोड़ देते। कभी दाढ़ी में उँगलियाँ फेरने लगते! राजा बैठने का इरादा करता तो दाय़ाँ झुककर कुर्सी उठा लेता। या राजा के “कुर्सी बाग में लगा दो” कहते ही दाय़ाँ उँगली के इशारे से नौकर को बुला लेता।

वफ़ादार ऐसे कि राजा जो भी सोचता, बायाँ कागज़ निकालकर सामने करता और दाय़ाँ फ़ौरन दर्ज कर देता। कभी-कभी राजा थक जाता था उन दोनों से। इसलिए सोते वक़्त दाएँ को तो सर के नीचे दबा लेता और बाएँ को खुला छोड़ देता। उसने





देखा था कि दोनों एक-दूसरे के बेलगाम गवाह थे।
एक हिलता तो दूसरा हिलता जरूर था।

नहलाते-धुलाते वही दोनों थे। राजा के
कुछ कहने से पहले ही दायाँ साबुन
उठा लेता और बाएँ से कहता,
“बाएँ मला ज़ोर से मला!” राजा
की बगलों में साबुन लगाने के
लिए एक-दूसरे से छीन भी
लेते थे। शरारती भी थे। कभी-
कभी बायाँ राजा की आँख
पे साबुन लगा देता तो राजा
चिल्लाने लगता। दायाँ जल्दी-
जल्दी पानी का लोटा उठा के राजा

की आँखों पर उड़ेल देता और आँखें मल के
साबुन का झाग बहा देता। लेकिन कभी-कभी
राजा झरने के नीचे खड़ा हो जाता तो राजा को बहुत मज़ा आता, लेकिन ये दोनों
छटपटाने लगते।

एक बार राजा के वज़ीर ने बगावत कर दी। और जब बगावत की तो राजा के
ख्वाबगाह में घुस के सबसे पहले इन्हीं दोनों को हथकड़ियाँ पहनाई। राजा की बेबसी
देखकर दोनों को बहुत गुस्सा आया। उँगलियाँ भींचकर मुट्ठियाँ दिखाई। लेकिन
करते क्या? मजबूर थे बेचारे। न अपनी कुछ मदद कर सकते थे, न राजा की। वज़ीर
ने राजा को ले जाकर किले की मीनार में बंद कर दिया। और दीवार के खूँटे से एक
ज़ंजीर राजा के पाँवों में डाल दी। मीनार की ऊपर वाली कोठरी में कोई खिड़की,
रोशनदान भी नहीं था। सिर्फ़ एक सलाखों वाला दरवाज़ा था जहाँ से पहरेदार आकर
खाने की थाली रखता और लौट जाता। दोनों चाहते थे किसी तरह निवाला तोड़कर
राजा के मुँह में डालें। लेकिन राजा बहुत गुस्से में था। दायाँ, बायाँ अपनी उँगली भींच
के रह जाते। राजा की मजबूरी पर दोनों को बड़ी तकलीफ़ होती।



एक रोज दोनों ने मिलकर दरवाजे के कोने वाली सलाख पकड़ी और राजा से कहा कि तुम भी जोर लगाओ। और टेढ़ी करके दो सलाख बाहर निकाल ली। उस रोज जब पहरेदार दाखिल हुआ तो बाएँ ने झटके से उसकी पगड़ी पैर की ओर गिरा दी और दाएँ ने सलाख उसके सर पे दे मारी। जैसे ही पहरेदार ने चीखने के लिए मुहँ खोला, बाएँ ने उसका मुँह बंद किया और दाएँ ने जल्दी से उसकी पगड़ी उसी के मुँह में ठूस के औंधा कर दिया। दोनों ने मिल के उसी की पगड़ी से उसे गठरी की तरह बाँध दिया। दोनों ने कंधे-कुहनी तक का जोर लगा के राजा के पैर की जंजीर खोल दी। राजा के लिए मौका था। वह दरवाजे से बाहर निकला और ऊपर की छत पर चढ़ के किले के पीछे वाली नदी में कूद गया। दाएँ-बाएँ ने भी खूब हाथ चलाए और राजा को लेकर दूसरे किनारे पर पहुँच गए।

फिर क्या था! पास ही घास चरता एक घोड़ा दिखा। दोनों ने उसकी गर्दन पे हाथ फेरा, फुसलाया और राजा को उसकी पीठ पर लेकर, गाँव पार करके सल्तनत की हद से बाहर निकल गए।

राजा का रसूख पड़ोसी राजाओं के साथ अच्छा था। महीने भर में राजा पड़ोसी की फौजें लेकर लौटा और गद्दार वज़ीर को निकाल बाहर किया।

फ़तह के बाद जब राजा रथ पे सवार शहर से गुज़रा तो फ़तेह का झंडा उसने दाएँ-बाएँ के हाथ में थमा दिया था। दोनों बारी-बारी उसको लहरा-लहरा कर लोगों की जय-जयकार का जवाब दे रहे थे तो राजा मुस्कुरा-मुस्कुराकर यही काम कर रहे थे।





नन्हा राजकुमार

(द लिटिल प्रिंस)

एन्टोनी द सेंट एक्सूपेरी

अनुवाद – देवी प्रसाद

` 65.00 / pp 80 / 2007

तारा की अलवर यात्रा

प्रज्ञा

` 65.00 / pp 60 / 2008





21031

विद्यया ऽ मृतमश्नुते



एन सी ई आर टी
NCERT

राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्
NATIONAL COUNCIL OF EDUCATIONAL RESEARCH AND TRAINING

ISBN 978-93-5007-316-2